काव्यालोचन के प्रतिमान और उनकी कविता

साधारणत: दैनन्दिन जीवन में हम कोई काम करने के बाद उसके बारे में फिर से एक बार सोचते है कि जो किया वह सही किया या कहीं कुछ गलती रह गई ? हालाँकि कर्म करने से पहले भी सोच-विचार करते हैं और जब-तब दुसरों से भी सलाह-मशविरा करते हैं। यही प्रक्रिया साहित्य में भी है। अर्थात साहित्य के साथ साथ साहित्य आलोचना की परम्परा भी रही ह। 'कविता' साहित्य की एक सशक्त विधा है। जब कि कविता साहित्य की सबसे पुराणी और उत्तम विधा के रूप में सर्वविदित हैं। तो जव से कविता लिखी जा रही है साथ-साथ कविता या काव्य-आलोचना भी होती रही है मतलव यह एक युग युग से चलती चली आ रही प्रक्रिया है। और आज भी जारी है। इस लम्बी प्रक्रिया या सिलसिले में युग युग से कवियों, काव्य-मर्मज्ञों, काव्य-चिन्तकों अथवा काव्यालोचकों ने कविता के लिए कुछ प्रतिमान या मानदंड निर्धारण करते हैं। जाहिर है यह भी एक गतिशील प्रक्रिया है समय के साथ-साथ इसमें भी परिवर्तन परिवर्धन होता रहता है। फिर भी कविता के कुछ मौलिक तत्व या उपादान हैं जो शुरु से लेकर आज तक कुछ न कुछ हद तक मान्य है। कविता में और कविता की आलोचना के लिए प्रतिमान के रूप या कसौटी के रूप उन सबका प्रतिपालन किया जाता है।

जाने-माने आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता में भाव एंव शिल्प दोनों ही दृष्टि से अत्यन्त सजग, सतर्क एंव अनुभव पुष्ट कवि हैं। और वे दोनों ही दृष्टि से सफल भी रहे हैं। और वह इसलिए भी कि कवि अशोक वाजपेयी एक अनुभवी तथा पौढ़ कवि होने के साथ ही एक ख्याति सम्पन्न काव्यालोचक भी हैं। अत: एक कवि के रूप में भी और आलोचक के रूप में भी कवि सदियों से

कविता के लिए जो प्रतिमान या नियम आलोचकों ने निर्धारण कर रखा है उन सबसे वाकिफ हैं और यह भी जानते और मानते हैं कि उन सबका पालन किसी न किसी रूप में, कमोवेश मात्रा में कवि के लिए अनिवार्य बन गया है। कवि अशोक वाजपेयी को यह भी पाता हैं कि निरन्तर परिवर्तनशील जीवन मूल्यों और मान्यताओं के साथ काव्यालोचन के प्राचीन प्रतिमान हमेशा प्रयोग नहीं कर सकते हैं। अत: एक सर्वमान्य एंव सर्वव्यापी मानदंड की स्थापना का प्रश्न अव्यावहारिक एंव भ्रमपूर्ण है। कारण प्रत्येक युग के कविता ये साहित्य को उस युग के कवि और अध्येता अपने ढंग से लिखना–पढ़ना और उसका विवेचन करता हैं। उल्लेख रहे कि यह तथ्य अधिकतर कविता के शिल्प या अभिव्यक्ति पक्ष के लिए अधिक संगत है क्योंकि कविता के बाह्य तत्व अर्थात शिल्प में परिवर्तन की गुंजाइश अधिक होती है किन्तु कविता के भाव पक्ष अर्थात अनुभूति एंव क्रोधादि भावानुभूतियाँ एंव संवेदनाएँ शास्वत हैं। अत: उनके स्वरूप एंव परिवेश में अन्तर हो सकता है, स्थान एंव पात्र बदल सकते हैं किन्तु मूलभूत तत्व नहीं। कवि अशोक वाजपेयी भी इससे सहमत है कि समय के साथ काव्यालोचन के प्रतिमानों में कुछ जुड़ता है कुछ निष्क्रिय सा हो जाता है मगर जो काव्य की कुछ वुनियादी चीजों में कोइ अन्तर नहीं पड़ता है जैसा प्रतिमानों में भी। कवि इस प्रसंग में एक बातचीत के दौरान करते हैं – 'समय के साथ साथ बलाघात, संयोजन की विधियाँ, मानवीय प्रसंग, कहने की शलियाँ आदि बदलती रहती है। लेकिन जैसे स्थायीभाव वैसे ही कुछ मूख्य अप्रासंगिक नहीं पड़ते। लेकिन कुछ नये मूल्य जुड़ते भी चलते हैं। बीसवीं शताब्दी की एक नयी उपलब्धि यह है कि उसने स्बतन्त्रता, समता और न्याय की मूल्यत्रयी को समूचे मानव व्यापार के लिए अनिवार्य बना दिया है। पहले इन मूल्यों का ऐसा अदम्य दबाव रचना पर या विचार पर नहीं था।' [1]

कवि अशोक वाजपेयी सिर्फ कवि ही नहीं एक प्रखर आलोचक भी हैं। वे कविता की सादियों पुराणी परम्परा से अच्छी तरह परिचित भी हैं फिर एक दूरदर्शी कवि तथा आलोचक के निस्बत वदलते परिवेश परिप्रेक्ष्य में कविताओं के अतीत वर्तमान और भविष्य को लेकर विचार-विमर्श भी करते हैं। वे जानते और मानते हैं कि निरन्तर परिवर्तनशील जीवन मूल्यों और परिप्रेक्ष्य के साथ प्राचीन काव्य आलोचना के प्रतिमान अथवा मानदंड पूर्णत: न्याय नहीं कर सकते अत: यहाँ भी खंडन मंडन प्रक्रिया लागु होती है। यह बिलकुल सही है क्योंकि साहित्य या कविता का स्वरूप में हमेशा बदलाव हो रहा है, तो आलोचना में या आलोचना के प्रतिमान हमेशा एक जैसा क्यों रहेगा? कवि अशोक वाजपेयी एक प्रबुद्ध कवि चिन्तक होने के नाते इन सभी मसलों पर अपनी राय तथा मान्यताएँ अभिव्यक्त करते हैं और उन सबका प्रतिफलन उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार कविता अपनी शर्तों पर रैडिकल है। अत: उसे उसी रूप में देखना और जाँचना होगा। इसी के तहत् दी हुई व्यवस्था कहीं न कहीं उसके लिए काफी नहीं है। वह उसे अतिक्रमण भी करते हैं। कवि की भाषा में – 'कविता अपने ढंग और अपनी शर्तों पर रैडिकल होती है और उसे उसके गहरे आशयों में पढ़कर उसकी मूलगामिता को समझने की जरूरत है। यह वक्तव्य या दावे का रैडिकलिज्म नहीं है, यह चरितार्थता में प्रकट मूलगामिता है। कविता इसी मुकाम पर स्वयं राजनीति है क्योंकि वह दी हुई व्यवस्था और चालू विषयों और मुहावरों का अतिक्रमण करती है।' [2]

फिर हर-बड़े कवि की अपनो-अपनी एक दृष्टि भी होती है जिसके तहत वे कविता को देखते हैं परखते हैं और उसी तरह से कविता में विन्यस्त करते है। कवि अशोक वाजपेयी भी निसन्देह आधुनिक काल के एक बड़े कवि हैं। अब तक काव्य परिदृश्य पर कविता को देखने का कविता लिखने का उसे जाँचने का, परखने का

जो मानदंड या प्रतिमान दृश्य पर मौजूद है उसका प्रतिपालन कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ कहा तक कर पाती है अथवा इन सबका प्रभाव और प्रतिफलन उनकी कविताओं में कहाँ तक हुआ है आदि। उसी के साथ-साथ कवि अशोक वाजपेयी की जो अपनी कविता से सम्बंधित विचार और मान्यताएँ रहा है और वह सबका प्रतिफलन उनकी कविताओं में कहा तक हुआ है आदि पर उनकी कविताओं के मध्य नजर विचार-विश्लेषण किया जाएगा। अत: इसके लिए जरूरी है फिलहाल कविता की परिदृश्यमें और कविता-आलोचना के क्षेत्र में जो काव्य-आलोचना के प्रतिमान मौजुद है उसे देख लेना। जाहिर है यह एक लम्बी-प्रक्रिया है अर्थात काव्यालेचन के जो प्रतिमान है वह किसी एक झटके में बन गया है ऐसा नहीं है। सदियों से चली आ रही प्रक्रिया का परिणाम है। जिसे देखने के लिए काफी पीछे की ओरजाना पड़ेगा। यानी शुरू से लेकर अबतक के काव्यालेचन के विकास क्रम के सिलसिलेवार रिश्ते को जानना है। इस प्रक्रिया में सबसे पहले कविता का स्वरूप को जानना होगा। कविता का स्वरूप जानना यह एक जटिल मामला युग-युग से कविता के स्वरूप को समझने-समझाने का प्रयत्न चल रहा है। कविता क्या है? इसकी प्रकृति-परिधि आदि को सदियों से काव्य मर्मज्ञ तथा विभिन्न विद्वानों ने परिभाषाओं में वाँधने का प्रयत्न किया है. तो कविता के स्वरूप जानने के लिए कुछ परिभाषाओं को देख लेना चाहिए। जाहिर है आगे चलकर इन्हीं सब परिभाषाओं में से जो बातें निकल कर आती हैं वही कविता के प्रतिमान बन जाते हैं।

अग्नि पुराण में काव्य की परिभाषा कुछ इस तरह दी गई है - 'संक्षेप में इष्ट अर्थ को प्रकट करने वाली पदावली से युक्त ऐसा वाक्य काव्य है जिसमें अलंकार प्रकट हो और जो दोष-रहित तथा गुण युक्त हो। भामह द्वारा दी गई परिभाषा- 'शब्दार्थो सहितो काव्यम्' अर्थात शब्द और अर्थ का संयोग काव्य है। आचार्य कुन्तक की परिभाषा - 'शब्दार्थो सहितो वक्र कवि व्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितो

काव्यम।' अर्थात वक्र शाली और किसी सूत्र में व्यवस्थित शब्दार्थ काव्य है। आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा – 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं जिसका अर्थ है – रसयुक्त वाक्य काव्य है। पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा दी गई परिभाषा: रमणीयार्थ: प्रतिपादक: शब्द:काव्यम्' अर्थात रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द काव्य है। उपर्युक्त सभी विद्वान या आचार्य संस्कृत के हैं।

यहाँ पर कुछ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का उल्लेख किया जा रहा है क्योंकि मौजुदा स्थिति में जो काव्यालोचन के प्रतिमान है उसमें प्राच्य-पाश्चात्य नये-पुराने सभी महत्व पूर्ण विद्वानों तथा उन सबके द्वारा दी गई परिभाषाओं का सार हैं।

सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि ड्राइडन की परिभाषा : 'Poetry is articulate music' अर्थ है 'कविता सुस्पष्ट संगीत है। कार्लाइल का भी मानना है 'Poetry we will call musical thoughts' जिसका अर्थ है कविता संगीत मय विचार है।

कॉलरिज की परिभाषा 'poetry is the best word in their best order' अर्थात सर्वोत्तम शब्द उपने सर्वोत्तम क्रम में कविता होते हैं।

कवि वड्र्सवर्थ के विचार हैं -- 'Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquility' अर्थ कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है, जिस का स्त्रोत शान्ति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटना है।

मैथ्य् आर्नाल्ड का कथन है -- 'Poetry is, at bottom, a criticism of life' जिसका अर्थ है कविता अपने रूप में जीवन की आलोचना है।

अब कुछ हिन्दी के कवि और आलोचक की परिभाषा तथा विचार पर गौर किया जाता है। जिन्होंने भी कविता के स्वरूप निर्धारण करने की चेष्टा की है। हलाँकि इस बीच रीतिकालीन कवि आचार्यों ने भी इस पर पहल की है लेकिन

उनमें से अधिकतर संस्कृत के आचायों का अनुकरण किए हैं। अत: यहाँ आधुनिक कालीन कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओं पर नजर डाला जा रहा हैं. अवश्य इनमें से अधिकतर लोगों ने जब-तब अपनी रचनाओं की टिप्पणी विशेष ही है। सबसे पहले आधुनिक कवि जयशंकर प्रसाद की काव्य-विषयक अवधारणा का उल्लेख किया जा रहा है। उनका मानना हैं -- काव्य आत्मा की संक्लपनात्मक अनुभूति है जिसका सम्बन्ध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं हैं। वह एक श्रेय मयी प्रेम रचनात्मक ज्ञानधारा है।' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी प्रसंगवश जो हैं -- 'कविता प्रभावशाली रचना है जो पाठक या श्रोता के मन पर आनन्द दायी प्रभाव डालती है। मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते हैं। वही कविता है, चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।' 'अन्तकरण की दृष्टियों के चित्र का नाम कविता है।'

प्रसिद्ध आलोचक रामचन्द्रशुक्ल कविता को लेकर एक निबध लिखते हैं जिसका शीर्षक है 'कविता क्या है?' प्रस्तुत निबंध पर वे कविता के स्वरूप के बारे में काफी गहराई और विस्तार से विचार प्रस्तुत करते हैं। वे मूलत : कविता को जीवन और जगत की अभिव्यक्ति मानते हुए कहते हैं कि — 'सत्वोद्रेक या हृदय की मुक्तावस्था के लिए किया हुआ शब्द-विधान काव्य है।'

कुलमिलाकर जितनी भी परिभाषाएँ यहाँ उद्धृत की गई है संस्कृत आचार्यों के या पाश्चात्य विद्वानों के अथवाआधुनिक हिन्दी साहित्य के कवि आलोचकों के, इन सबके अलवा और भी जितने हैं कोई भी एक परिभाषा स्वयं-सम्पूर्ण नहीं किसी में अव्याप्ति दोष है, किसी में अतिव्यप्रि दोष। अर्थात यह स्पष्ट है कि कविता का स्वरूप को किसी भी परिभाषाओं में समेटना कठिन है। जो भी हो, इन सब परिभाषाओं से कुछ सामान्य तत्व जरूर निकल कर आते हैं। जो समग रूप में सामान्य तौर पर कविता का स्वरूप निर्धारण करने में मदद करती है।

इन परिभाषाओं में जो बीज शब्द है जिस पर मूलत : परिभाषाकार बल देते हैं अर्थात जिसे कविता के प्रतिमान के रूप में देखते हैं उन सब शब्दों को अलगाकर एक साथ रखकर देखा जा सकता है जिससे काव्यालोचन के प्रतिमान निर्धारित होता है — अलंकार युक्त, दोष-रहित, गुण-सहित, शब्द और अर्थ का संयोग, वक्रव्यापारशाली, रस युक्त वाक्य, रमणीय अर्थ, संगीतात्मकता, सर्वोत्तम शब्द, विचार, प्रबल अनुभूति, जीवन की आलोचना, कल्पना, युक्ति, आनन्द, सत्य, मधुर शब्द, आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति, परिपूर्णक्षण, प्राणो की सृष्टि, मनोभाव, पद्यात्मक, गद्यात्कम, अन्तकरण की वृत्ति, सत्वोद्रेक, गुण, सत्य, चारूत्व, अभिव्यक्ति, युक्ति, जीवन, जगत आदि।

उपयुक्त विभिन्न विद्वानों कवि आलोचकों के काव्य सम्बंधी परिभाषा या विचारों को समग्रता के रूप में लेते हुए विद्वानों ने कविता के प्रधानत : और प्रथमत दो तत्व स्वीकार किए हैं —

(1) भाव-तत्व (भावपक्ष)

(2) भाषा-तत्व (कलापक्ष)

जैसा कि कवि आलोचक अशोक वाजपेयी को काव्यालोचन के जो प्रतिमान अबतक मौजूद हैं उन सब की जानकारी है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई हैं। वे उन सबका ख्याल अपनी कविताओं में रखते हैं मगर वहाँ तक जहाँ तक उन्हें बदलती हुई परिस्थिति और परिवेश में प्रासंगिक लगे। विशेषत : भाव-तत्व सा भावपक्ष को लेकर उस तरह से कोई आपत्ति या टकराहट पूर्ण स्थिति पैदा होता नहीं है। लेकिन कविता के दूसरा तत्व कला पक्ष या अभिव्यक्ति पक्ष को लेकर कहीं न कहीं मतभेद दिखाई पड़ता है। जैसे अलंकार, गुण आदि को कविता के लिए अनिवार्य कहा गया है किन्तु कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में इन सबका अनिवार्यता को नहीं स्वीकारते हैं अभिव्यक्ति के दौरान यकायक आ जाय तो उसमें दोष नहीं है। और

एक उदाहरण लिया जा सकता है कि कविता हमेशा जीवन की आलोचना नहीं है। कवि अशोक वाजपेयी का मानना है कि बिना जीवन से तो कविता सम्भव नहीं लेकिन जिस अर्थ में कविता को जीवन की आलोचना माना गया है उस अर्थ में नहीं। यहाँ कवि अशोक वाजपेयी के कविता सम्बंधी कुछ विचार और मान्यता का उल्लेख करना समीचीन होगा जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि अबतक के काव्यालोचन के प्रतिमान और उनके विचार में कितना तालमिल है।

कवि अशोक वाजपेयी दरअसल कविताकि यह दो तत्व अर्थात भाव-पक्ष और कला-पक्ष जिसे कविता का प्रतिमान माना जाता है, यह दोनों को वे अपर्याप्त और किसी हदतक अप्रामाणिक मानते हैं। उनका तर्क है कि कविता अपना भी जीवन है वह अनुकरण नहीं भाषा का स्वाधीन कर्म है। फिर शिल्प कथ्य का द्वैत नहीं है अर्थात उसकी रचना प्रक्रिया में कोई अलगाव नहीं है और आस्वाद में भी तो पड़ताल के लिए इस तरह का द्वैत मानना जरूरी नहीं हैं। इस प्रसंग में उनका कथन उद्धृत किया जा रहा है — 'कविता को देखने परखने की जो दो प्रमुख पद्धतियाँ थी उनमें से एक थी कि कविता जीवन और अनुभव की भाषा में अंकन या अनुकरण है और दूसरी थी कि कविता में हाँलाकि भावपक्ष और कलापक्ष एकमेव होते हैं, समझ और पड़ताल के लिए उन्हें अलगाकर देखना ही पड़ता है। मुझे लगा कि ये दोनों ही अपर्याप्त और किसी हद तक अप्रमाणिक है। बिना जीवन के कविता सम्भव नहीं, पर कविता का अपना भी जीवन है; वह अनुकरण नहीं, भाषा का स्वाधीन कर्म है। वह अनुभव का अनुवाद नहीं, स्वयं जीवन संश्लिष्ट अनुभव है। अगर कविता में शिल्प-कथ्य का द्वैत नहीं है यानी उसकी रचना प्रक्रिया में ऐसा अलगाव नहीं है, नहीं उसके आस्वाद में ऐसी फाँक है तो फिर पड़ताल में यह द्वैत मानना जरूरी नहीं लगता।' [3]

कवि अशोक वाजपेयी की कविता सिर्फ समय को रचता नहीं है वह समय के अन्दर रचा जाकर भी समय का प्रतिरोध भी है वह समय को। क्योंकि वह समय को चीरते हुए उससे पार निकल जाता है। क्योंकि जो सच हैं वह समय में पूरा समाता नहीं है। मतलव कवि अशोक वाजपेयी कविता को सिर्फ समसामयिक जीवन की आलोचना नहीं मानता है। अर्थात कवि अपनी कविता के लिए समय और समाज तक दायवद्ध नहीं है। उनकी भाषा में — 'अगर लय गति और यति, मौन और मुखरतास संकेत और छन्द समय के भी गुण हैं तो समय को स्वभावत: कविता के नजदीक माना जा सकता है। पर कविता समय का प्रतिरोध भी है: वह समय को बेधते हुए उससे जाने की आकांक्षा करती है। शायद इसलिए कि उसे पता है कि सच समय में पूरा नहीं समाता वह समय के पार भी होता है।' [4]

कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'समय के पास समय' शीर्षक कविता का पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है प्रतीकात्मक रूप में कवि यही विचार व्यक्त करते हैं कि समय सीमा लाँधना चाहता है अपने समय तक अर्थात सिर्फ वर्तमान में रहना उसकी विशेषता नहीं है उसमें कहीं दूर तक जाने की संभावना है —

'समय ठिठकता है,
समय चाहता है अपनी कक्षा से बाहर आना,
समय ऊबता है अपने समय होने से।
समय चाहता है
जानबुझकर कुछ को अपने घेरे से बाहर छोड़ देना
कुछ को नजर अंदाज करना,
कुछ को भूल जाना।' [5]

इसी के तहत कवि अशोक वाजपेयी के काव्य का एक मजबूत सरोकार 'अनन्त' का जिक्र किया जा सकता है। कवि अनन्त या समयातीत जैसे कविता सरोकार पर इसलिए भी बल देता है कि सिर्फ सामाजिक समय तक कविता को सीमावद्ध करना कविता के साथ अन्याय है और काव्य परिधि को संकुचित करना था। इस दृष्टि से उनकी काव्येतर कला-सम्बंधी कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है 'बहुरि अकेला' काव्य-संग्रह इसका सशक्त उदाहरण है।

कविता में विचारों दृष्टियों और अनुभवों आदि की बहुलता के प्रबल पक्षधर कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में प्रमाणित करते हैं। जबकि जो काव्य-दृश्य है उस पर सामाजिक समय होती है अथवा विचार-धारा का बोलबाला है कवि इसे शिद्दत के साथ खारिज करते हैं। यह उनके द्वारा एक कारगर हस्तक्षेप है। अवश्य यहा याद किया जा सकता है कविता के जो तत्व है वहाँ भी इस तरह का कोई बन्धन नहीं है कविता के लिए इस आनन्द और रमणीयता आदि जो तत्वों के बारे में कहा गया है, इसका प्रमाण है। कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं मे प्रेम, व्यक्तित्व जीवन के खन्या अनुभव, समाज जीवन के सच्चाई अनन्त और अन्यान्य कलाएँ भी। दो-एक उदाहरण देखा जा सकता है। प्रेम सदियों से काव्य का प्रिय विषय या स्थायी भाव रहा है लेकिन समसामयिक दौर में उसे एक तरह से हाशिए पर रख लाया था। कवि अशोक वाजपेयी इसे पुनः स्थापन करते हैं अपनी कविताओं में कवि अपने कवि जीवन के प्रारम्भ में अपने व्यक्तिगत प्रेमानुभूति को जैसा का तैसा (अर्थात सांकेतिक या प्रतीक के माध्यम से नहीं) कविता में अभिव्यक्त करते हैं। हालाँकि उस समय यह एक साहसिक हस्तक्षेप था जो एक सच्चे और असली कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'दुख तेरे होने का' शीर्षक से-

'आत्म समर्पण के क्षण में
जब तू फूट-फूट कर रो उठती है

अपनी करूणा से घिर कर,

तो जानती है मुझे क्या देती है तेरी आँखे,

तेरे अनावृत उरोज और सिहरता करक तक ?

एक दुख तेरे होने का,

और होकर प्यार करने का,

और प्यार कर समर्पित हो जाने का।' [6]

'प्रकृति' भी सदा से कवियों के लिए प्रेरणा-स्त्रोत तथा कविता के लिए आकर्षण का क्षेत्र रहा है। कवि प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण कर मानावीय भाव-अनुभूति और प्रकृति का प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त करते है, कवि अशोक वाजपेयी भी इस परम्परागत मान्यता को अपने प्रयोगशील दृष्टि से नये रूप में रूपायन करते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जहाँ कवि प्रकृति के प्रति लोगों का अनिहा तथा अलगाव भाव को लेकर चिन्तित है। हालाँकि प्रकृति में ही मानव प्रकृत सुख प्राप्त कर सकता है। उनकी कविता 'रिवाज नहीं रहा' शीर्षक की पक्तियाँ —

'किसी को इतनी-सारी चकाचौंध में दिखाई ही नहीं देता

सन्धा को विषष्ण चमकता नीला तारा,

न सुनायी देता है उस से भी पहले, जागी चिड़ियाँ का स्वर

नींद की साथी घाटी के पार कोई नहीं सुनता —

उसे अकसर सुबह लाउड स्पीकर पर पड़ोस के मन्दिर से आ रहे समधुन

या दूर की मस्जिद से गुरोती-सी अजान की पुकार

दबोच लेती है :

अब अकेले और चुपचाप प्रार्थना बुदबुदाने का रिवाज नहीं रहा।' [7]

अशोक वाजपेयी की कविताओं में जीवन की आलोचना भी सच्चे-खेर शब्दों की गई है। समसामयिक समाज के हर तरह से टुटी विखरी स्थितियों का जायजा

भी वे अपनी कविताओं में करते दिखाई पड़ते हैं। मानव आज मानवीयता से दूर खड़ा है। एक यन्त्र, एक मशिन जैसा जीवन जी रहे हैं, दूसरों के लिए कोई हमदर्दी कोई ममता शेष नहीं रहा आदि को लेकर कवि चिन्तित है। एक उदाहरण उनकी कविता 'लुहार' शीर्षक कविता से लिया जा सकता है —

'मेरी धंधई लाचारी यह है कि मुझे लोहे पर तो भरोसा है
आदमी पर नहीं,
भले ही खुद आदमी के काम का होना लोहे के अदम्य सपना हैं
यह खदी इतनी अधिक आदमी की न होकर कुछ
लोहे की भी हुई होती तो शायद ज्यादा भरोसेमंद साबित होती।' [8]

कुलमिलाकर कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ विविधता से भरपूर है। वे किसी भी सोमा या घेरे में आबद्ध नहीं होते हैं। उनकी कविताओं में अच्छी कविताओं का सारे गुण विद्यमान है किसी भी रुढ़ि या विचार धाराओं से ग्रस्त नहीं। यह हाल उनकी कविताओं के भावपक्ष और कलापक्ष दोनों के लिए समान है। कलापक्ष में कवि अशोक वाजपयी अपनी कविताओं में कई तरह से नये-नये प्रयोग करते दिखाई देते हैं। मिसाल के तौर पर उनकी कविता की जो पंक्ति है वह अलग-अलग रूप में या कि अलग से एक-एक पंक्ति कविता की पंक्ति जैसा लगता ही नहीं है। समग्र रूप में ही कविता बनती है। यह रूप उनकी गद्य कविताओं में तो है ही अन्य कविताओं में भी देखा जा सकता है। उदाहरण के रूप में उनकी कविता 'एक कविता क्रम' उल्लेखनीय है। वहाँ पूरा नहीं कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा है —

'वह मुझे ठिठूरती रात में
वह किसी ठाबे में भूख से व्याकुल
गोश्त की बोटियों पूस रहा होता था

मैं दूर बैठकर देखता था

उसके चेहरे पर धीरे धीरे प्रकट होती तृप्ति

जहाँ मुझे मालुम है

वह कभी नहीं आएगा।' [9]

कविता में कला पक्ष को लेकर कवि को अत्यन्त सजग होना पड़ता है क्योंकि कविता विचार से अधिक भावों का मामला है। कविता में कवि अपने गहन–से–गहन और सुक्ष्म से सुक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति देते हैं। अत: कवि अपनी कविता में अर्थ गाम्भीर्य, समाहार शक्ति, प्रांजलता और प्रभाविष्णुता जैसे उत्पन्न करने के लिए कलापक्ष के अन्तर्गत सही शब्द योजना रस अलंकार छन्द, लय, बिम्ब, प्रतीक आदि का सन्तुलित प्रयोग करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी इस मामले में सिद्धहस्त है। कवि अपनी कविता में कलापक्ष के अन्तर्गत इस सभी काव्यतत्वों का कमोवेश करते हैं। अवश्य इन सब काव्य तत्वों का प्रयोग वे अपने प्रयोगशील दृष्टि तथा मानसिकता के बतौर करते हैं। अर्थात पूर्वनिर्धारित तत्वों का पुनरीक्षण करते हुए बदलते परिवेश परिदृश्य के अनुरुप उन सबका व्यवहार करते हैं। वे अपनी कविताओं में कहीं भी इन सब तत्वों का निरूपण जब से नही करते हैं, भावों की अभिव्यंजना करते समय वह यो ही आ जाता है। अवश्य इन में से कुछ है जैसा कि छंद कवि अशोक अपनी कविताओं में उपयोग नहीं करते हैं। और उनका मानना भी है कि छन्द पर अधिक ध्यान केन्द्रिक करने जाकर कविता में भाव दब जाता है। तो कवि की कविताओं में मुक्त छन्द का प्रयोग देखने को मिलता है। हालाँकि कवि फिलहाल इस पर भी पुन: विचार करते हुए दिखाई पड़ता है। फिलहाल कवि मुक्त छंद की अराजकता को काव्य–दृश्य पर देखते हुए फिर छन्द का प्रयोग तर्क संगत मानते हैं। अत: कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में परम्परागत काव्यशास्त्र के अनुरूप प्रतिमानों का प्रतिपालन तो हुआ है मगर हु–ब–हु

नहीं। यहाँ भी उन्होंने अपनी दृष्टि के अनुसार ही प्रयोग करते हैं। उनकी कविताओं में प्रयोग कलापक्षीय परम्परागत काव्य-प्रतिमान का कुछ उदाहरण देखा जा सकता है — कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में अलंकारों का प्रयोग जब-तब हुआ है। लेकिन कवि जान-बुझकर अर्थात प्रयास करके अलंकार का प्रयोग नहीं करते हैं। भावाभिव्यक्ति के धारा में वह यों ही आ गया है। उपमान अलंकार का एक उदाहरण यहाँ पर देखा जा सकता है। कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'प्यार करते हुए सूर्यस्मरण' शीर्षक की इन पंक्तियों में —

'जब तुम मेरी बाहों में
सांझ-रँग-सी डूब जाती हो
और मैं जलबिम्बों सा उभर आता हूँ
तब सिर्फ आँखे हैं
जो प्रतीक्षा करती है मैरे लोटने की
उन दिनों में जब मैं नही जानता था
कि देहों के बीच एक आकाश होता है
सूर्यआकाश।' [10]

'अब बचा ही क्या है' अशोक वाजपेयी की एक उल्लेखनीय कविता है भाव और भाषा दोनों दृष्टि से यह कविता अत्यन्त महत्व पूर्ण है। इस कविता में एकसाथ अलंकार, बिम्ब और प्रतीक का अनायास आगमन हुआ हैं —

'अब बचा ही क्या है:
आँसु, फूल, पत्थर पंख और शब्द
पुस्तकें और छबियाँ
कोई नहीं जानता कि नदी सुख गई हैं;
अप्रत्याशित का भय आत्मा से ऐसे चिपट गया है
जैसे किसी वृक्ष के तने से छाल।' [11]

कवि अशोक वाजपयी अपनी कविताओं में अपने भावों की सहज और प्रभावी अभिव्यक्ति के लिए जब-तब प्रतीकों का सहारा लेते हैं जिसमें कुछ परम्परागत प्रतीक हैं और बहुत सारा नये प्रतीकों का भी व्यवहार वे करते हैं। कवि की कविता 'कविता के हरे गझिन वृक्ष से' शीर्षक में प्रतीकों का भरमार देखने को मिलता है। उदाहरण के रूप में कुछ पक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा है —

'कविता के हरे गझिन वृक्ष से
तुम तोड़ सकती हो एक शब्द
वर्णमाला से उठा सकती हो
एक व्यंजन की तरह उम्मीद
क्या क्षितिज पर बची रह गयी आभा से
तुम ला सकती हो एक किरण ?' [12]

निष्कर्ष :

कवि अशोक वाजपेयी सिर्फ एक कवि ही नहीं एक सशक्त काव्यालोचक भी हैं। वे अपनी कविताओं में काव्यालोचन के जो बनी-बनाई प्रतिमान है उन सबका ख्याल रखते हैं। लेकिन एक अनुभव, सजग, प्रयोगशील चेतना सम्पन्न कवि काव्यालोचन के पूर्वनिर्धारित प्रतिमान का उपयोग वहाँ तक करते हैं जहाँ तक उन्हें इस बदलते परिवेश और परिदृश्य में कारगर लगे। वैसे भी काव्य-आलोचन के बनी-बनाई प्रतिमान से यदि आज की कविता को जाँचा-परखा जाय तो कहीं न कहीं यह मानदंड नाकाफी साबित होगा। तो यही बात कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं को लेकर भी है । हालाँकि कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं के लिए कुछ ज्यादा ही । खास तौर पर कविता में शिल्प पक्ष को लेकर कवि जैसा कि अत्यन्त सजग हैं वे अपनी कविताओं में शिल्प पक्ष के चालु मुहावरे से हटकर कुछ

नया प्रयोग भी करते हैं। मसलन तत्सम और तदभव शब्दों का अधिक प्रयोग, वाक्य-विन्यास में भी कुछ नयापन लाने की कोशिश करते हैं उनकी गद्य कविता इसका मिसाल है। भाव पक्ष मे भी कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में विविधता विद्यमान है। जो कि भारतीय कविताओं की पहचान भी है।

कहीं न कहीं कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता में अपनी दृष्टि के तहत फिर निजी सत्य को व्यापक सत्य में तब्दील करने के लिए आधुनिक हिन्दी कविता में एक निजी भाषा और काव्य विधि का सृजन करते हैं। यहाँ पर नन्दकिशोर आचार्य का कथन द्रष्टव्य है —'कविता की प्रक्रिया अर्थात निजी सत्य को व्यापक सत्य में रूपान्तरित करने के लिए ये कविताएँ आधुनिक हिन्दी कविता में एक निजी भाषा और काव्य विधि का आविष्कार करती हैं। यह काव्य विधि स्मृति और वर्तमान को एक दूसरे के बरक्स रखने में हैं जहाँ सपना दोनों का सन्दर्भ बिन्दु है — 'सपना जो जितना अतीत है, उतना ही भविष्य भी।' [13] कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में सूक्ष्मता, वाकसंक्षेप, संयम और लयात्मकता आदि गूण मौजूद है जो काव्य भाषा के लिए प्रतिमान माना जाता है। फिर वे कुछ गद्य कविताएँ भी लिखते हैं, जो है तो कविता ही, मगर गद्य जैसा । इसे उनके द्वारा प्रयोग के रूप में देखा जा सकता है।

जो भी हो कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में उनके प्रयोगशील मन-मानसिकता के रहते हुए भी काव्यालोचन के जो अबतक प्रतिमान है उन सबका कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में कमोवेश प्रयोग हुआ है, प्रतिपालन हुआ है । प्राचीन और अर्वाचीन कवि हमेशा इस तथ्य पर जोर देते हैं कि हम जो भी है, जहाँ भी है इसके पीछे पूर्वजों का अवदान और योगदान है और रहेगा। यह तथ्य और सत्य जीवन में भी और कविता में भी उतना ही सच है। फिर कविता के भावपक्ष में भी और कलापक्ष में भी। कवि अपनी मशहूर कविता 'पूर्वजों की अस्थियों में'

शीषक में इस तथ्य और सत्य का खोलासा करते हैं कि— हमारा जो वजूद है वह हमारे पूर्वजों की अस्थियों में हैं। जिस शब्द के माध्यम से कविता गढ़ते हैं । अर्थात इसका वाक्य-विन्यास सभी हमारा नहीं वह सब पहले का है अर्थात बनी-बनाई है —

'हम अपनी पूर्वजों को अस्थियों में रहते हैं!
हम उठाते हैं एक शब्द
और पीछली शताब्दी का वाक्य-विन्यास
विचलित होता है,
हम खोलते हैं द्वार
और आवाज गूँजती है एक प्राचीन घर में कहीं!' [14]

परम्परा से संवाद

एक किसान के भाषण में सुना था उन्होंने कहा था कि–जो जितना पीछे की ओर देख सकता है वह उतना ही आगे की ओर जा सकता है। उस समय इस बात का मर्म/अर्थ समझ नहीं पा रहा था लेकिन आज कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं को पढ़ते हुए उस विद्वान की बातों की गहराई तथा मर्म को कुछ हद तक ही सही समझ में आ रहा है। हमारा वर्तमान और भविष्य अतीत (परंपरा) की भित्ति पर टिका हुआ है। तो भित्ति (वुनियाद) जितना मजबुत होगा वर्तमान और भविष्य उतना ही अच्छा और सुन्दर होगा। दुसरी भाषा में कहें तो वुनियाद अगर ढिला–ढाला और कमजोर है तो उस पर हम मजबुत और सुन्दर भवन निर्माण नहीं कर सकते। इस दृष्टि से उदाहरण के रूप में कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'वृक्ष ने कहा' शीर्षक में देखा जा सकता है। कवि इस कविता में वृक्ष के रूपक के जरिए कहते है कि इधर–उधर भटकने से कोई फायदा नहीं है, कुछ मिलनेवाला नहीं है। अपनी जो जड़ है वही सत्य है उसी पर जमकर रहकर रस खींचना चाहिए। अगर ऐसा कर पाया तो तभी सार्थक होगा इस तरह से जो अपनी जड़ पर कायम रहगा उसकी ओर आकाश झुकेगा अर्थात उसे सफलता हासिल होगी। और पृथ्वि भी उन्हीं की पूतस्पर्श करेगी। प्रस्तुत कविता में 'वृक्ष' को प्रतीक द्वारा मानव और मानव–समाज को यही सन्देश देते है कि यदि हम अपनी जड़ों से कटकर कहीं दूसरी रास्ते अपनाते हुए सफलता या कामियावी तक पहुँचना चाहे तो हम नाकाम होंगे। इसके वीपरीत अगर हम अपनी–अपनी जड़ों को मजबूती से पकड़ते हुए आगे बढ़ेंगे तो जरुर मंजिल तक पहुँच सकते हैं —

'इधर–उधर भटकने–खोजने से क्या होगा ?

अपनी जड़ों पर जमकर रहो,

वही रस खींचो

वही आएँगे फूल, फल, पक्षी,

धूप और ओस,

वही आकाश झुकेगा —

वही पृथ्वी करेगी पूतस्पर्श —

वहीं जहाँ जड़ें हैं

और उन पर जमे तुम हो,

वहीं।' [15]

इसी विचार और भावनाओं का दृढ़ स्वरूप हमें कवि अशोक वाजपेयी की बहुत सारी कविताओं में देखने को मिलता हैं। उनकी एक और कविता है 'धरती को छुआ' शीर्षक सें यहाँ कवि का कहना है कि इस धरती को छूने के लिए वे झुकते और ऐसा छुआ जैसे वह अपनी स्वर्गवासी माँ के पाँव छूँ रहा है। तो यहाँ उल्लेखनीय बात है कवि जो धरती को माँ का दरजा प्रदान करते हैं यहाँ धरती अर्थात परम्परा। कवि इस परम्परा में माँ के जैसा भक्ति और सम्मान के साथ झुक कर यानी पूर्णत: समर्पण भावना सहित नमन करते हैं —

'में झुका

मैंने उस धरती को ऐसे छुआ

जैसे अपनी दिवंगत माँ के पाँव छू रहा होऊँ।' [16]

शायद ऐसे ही कुछ कारणों से फिर अपने पूर्वजों पर अगाध विश्वास के रहते कवि 'अपने पोते के लिए प्रार्थना करते हैं और दृढ़ता से कहते हैं कि विरासत में तुम्हें देवता नहीं पूर्वज मिले। कुछ पक्तियाँ —

'यह मेरी उलझन नहीं जिम्मेदारी है कि

विरासत में मैं तुम्हें देवता नही पूर्वज सौंपू :'

कवि अलोचक–संस्कृति कर्मी अशोक वाजपेयी एक तो अर्वाचीन कवि है इसी अर्थ में वे एक प्राचीन कवि भी है अर्थात परंपरावादी कवि। उनके कवि जीवन के प्रारम्भ काल से ही वे परंपरा से संवादरत है और आज भी जारी है। यह संवाद कहीं भी कटे हुए नहीं है वह सिलसिलेवार चलता चला आ रहा है। उदाहरण के रूप में कवि का पहला काव्य–संग्रह 'शहर अव भी सम्भावना हैं' के एक मशहूर और विचारोत्तेजक कविता 'एक आदिम कवि का प्रत्यावर्तन' शीर्षक का जिक्र कर सकते हैं। देख सकते हैं एक युवा कवि के जोशिले अन्दाजे वया मगर होश को महफूज रखते हुए अपने सड़ाँध पूर्ण सामाजिक व्यवस्था और टूटते मानवीय रिश्तों के समसामयिक वातावरण से नाराज और इसके जगह आदिम हँसी को लौटाने की उम्मीद लिये हुए। कवि का मानना है हमारे अतीत सम्पूर्णत : सुनहला नहीं है फिर बहुत कुछ ऐसा है जो हमें हँसा सकता है, जीवन को जीने लायक बना सकता है, क्योंकि कम–से–कम हमारी सभ्यता एक जीवित सभ्यता है —

'लोगों,मैं सभ्यता का काव्यमुख लाया हूँ
ये मेरी छाती धरती की याद है
ये मेरी जाँघे घाटियों का प्रेम हैं
ये मेरी आँखे झीलों का रूप हैं
लोगों, मैं तुम्हारी आदिम हँसी हूँ
मुझमें तुम्हारा वह आँसू संग्रहीत है
मेरा हृदय डूबा है
तुम्हारे उस आदिम संगीत में —
तुम्हारी आँखों में
तुम्हारे होठों पर
तुम्हारे कंठों में।' [17]

इसी के चलते कवि अशोक वाजपेयी की प्रेम और श्रृंगार सम्बंधित कविताओं को उल्लेख किया जा सकता है। सदियों से प्रेम या श्रृंगार भारतीय काव्य का विषय रहा है लेकिन कुछ अरछे से हम भूला बैठे थे कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में इस भूला दिए गये विषय को पुनराविष्कार पुनः ज्जीवित जैसा करते हैं। इसी के साथ-साथ एक और महत्वपूर्ण काम कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं और आलोचनाओं में करते हैं वह है साहित्य और अन्य कलाओं के बीच अन्तः सम्बंध का विचार विश्लेषण। यह भी एक ऐसा तथ्य है जो हमारी परम्परा में तो रही है मगर हम उनकी ओर से नजर हटा लिये थे। कवि इसकी ओर भी हमारी ध्यान आकर्षित करती हैं। जो कि उनकी एक महत्वपूर्ण कार्य के रूप में देखा जा सकता है। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में, अपनी आलोचनाओं में भी इस बात पर जोर देते हैं कि हम परंपरा से संवाद किए बिना वर्तमान या भविष्य से सम्पर्क साध नहीं सकते हैं। इस बात को वे अपनी कविताओं और आलोचना में बार बार दोहराते हैं परंपराए हमारी थाती है उसे हमें मजबुती से पकड़ना चाहिए और वे जो रास्ता दिखाते हैं उसी रास्ते से हमें आगे बढ़ना चाहिए। ताकि हम आसानी से गन्तव्य/मंजिल तक पहुँच सके। हालॉकि रास्ता कभी खत्म नहीं होता है। इस प्रसंग में आलोचक रमेशचन्द्र शाह का कहना समीचीन है वे भी कहते हैं कि कवि अशोक वाजपेयी का जो कवि चेतना है वह एक विशेष अर्थ में सजग और दुहरी चेतना है। उसमें पाचीन और अर्वाचीन एक साथ है फिर आदिम और सभ्यता उनकी कविताओं में एक साथ झंकृत होना चाहते हैं —

'अपने जीवन की धुंध से घिरा
बचपन के मुबहम होते
जाते चेहरों को
खोने से पहले याद करता हुआ

मैं इसी अधवनी कविता से पूछता हूँ

कितना बजा है ?' [18]

अशोक वाजपेयी की कवि चेतना एक विशेष अर्थ में सजग और दुहरी चेतना है: उसमें प्राचीन और अर्वाचीन, आदिम और सभ्यस्तर पास आना और जुड़ना ही नहीं: एक साथ झंकृत भी होना चाहते हैं और कवि को कल्पना यानी शब्द-संवेदना भी मानों तभी कृतार्थ होती है जब वह ऐसा कर पाती हैं।

''लोगों में सभ्यता का काब्यमुख लाया हूँ''.....कवि की एक बहुत पहले की कविता की पंक्ति यदि यहाँ बरबस ही याद आगयी तो यूँ ही नहीं याद आगयो। इस पंक्ति और कविता के शीर्षक ''एक आदिम कवि का प्रत्यावर्तन'' के बीच जो विरोधाभासी टंक्कार है, वह भी यूँ ही नहीं है: उसे हम कवि के विकास-क्रम में आगे भी सुनते रहे हैं। वह 'वक्त के मौन में कहीं दूरसे आ रही पुकार'' है, वह ''हड्डियों को एक जीवित सभ्यता'' है, वह यह अहसास है कि —

'हम अपने पूर्वजों की अस्थियों में रहते हैं

हम उठाते हैं एक शब्द

और किसी पिछली शतब्दी का वाक्य-विन्यास

विचलित होता है

हम खोलते हैं द्वार

और आवाज गूँजती है एक प्राचीन घर में कही'

मानव-व्यक्ति का और मानव समाज का भी संतुलन बनाए रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि चेतना के आदिम और अधुनातन स्तरों के बीच संवाद बना रहे। [19]

इस सिलसिले में यहाँ हशमत का कथन भी उद्धृत किया जा सकता है क्योंकि वे भी मानते हैं परंपरा और आधुनिकता में जो सम्पर्क स्थापित करते हैं कवि

अशोक वाजपेयी इसके माध्यम से उनके वैचारिक प्रचुरता और सघनता प्रकट होती है। 'परंपरा और आधुनिकता के सम्मिश्रण ने अशोक को वैचारिक प्रचुरता और सघनता प्रदान की है, उसके 'में' में कई साझेदारियाँ मौजुद हैं। कवि अशोक वाजपेयी कभी यह नहीं कहते हैं कि परंपरा हर-हमेशा हमें सहीं रास्ता ही दिखाता है। उनका तो यह कहना है कि परंपरा गलत रास्ते के बारे में भी बताते और हमें बार-बार सचेत करते हैं कि गलत रास्ते जाऊँगे तो गड्ढे में गिरोगे।'

प्रयोगशील मन मानसिकता के कवि कतई अंध परंपरावाद नहीं है। वह प्रयोगशीलता बतौर एक परंपरावादी कवि ह वे परंपरा को जाँचते हैं, परखते हैं फिर अपनाते हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कवि अशोक वाजपेयी एक अर्वाचीन कवि भी है। वे अपनी कविताओं में अपने युग के या समसामायिक समाज के विराट संभावनाओं और उसके तनाव को प्रभाविष्णु ढंग से समेटा-सहेजा है। एक कान्तद्रष्टा कवि होने के नाते कवि अशोक वाजपेयी अतीत (परंपरा) को वर्तमान के साथ जोड़ते हैं फिर दुसरी ओर वे वर्तमान झरोखे से भविष्य की ओर झाँकते हैं और उसकी संभावनाओं को पहचानने की कोशिश करते है। अत: उनकी कविताओं में अतीत की परंपरा है, वर्तमान की समसामयिकता और भविष्य की संभावनाएँ एक साथ एकजुट होकर एक कड़ीके रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। बिलकुल सही कहते हैं रमेशचन्द्र शाह कि-कवि अशोक वाजपेयी अपनी पीढ़ी के उन थोड़ो से कवियों में हैं जो अपनी लेखनी में अपने समसामयिकता के नैतिक दायित्व को तो निभाते ही है उसके साथ साथ इस दायित्व बोध को समसामयिकता के दायरे से बाहर ले जाकर परंपराबोध के साथ काफी सचेत ढंग से जोड़ने की काशिश करते हैं। उनकी भाषा में —'अशोक अपनी पीढ़ी के उन थोड़े से कवियों में हैं जिन्होंने न केवल नितान्त समसामयिकता से नैतिक दायित्व को अपने कवि कर्म और आलोचनात्मक चिन्तन से निभाने और बसाने की, बल्कि समकालीनता

की चाहरदिवारी के बाहर निकलकर उस दायित्व को मनुष्य के चराचर परिवेश से और परंपरा बोध से भी काफी सचेत ढंग से जोड़ने की कोशिश की है। [20] कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार हमारी भारतीय संस्कृति बहुलता पर आधारित संस्कृति है जहाँ परम्परा और आधुनिकता में वैसा विरोध है ही नही जैसा कि तथाकथित पश्चिमी चिन्तन और सोच-विचार प्रभावित लोग मानते हैं। एक साक्षात्कार में वे कहते हैं —'हमारे सतही ढंग से पश्चिमी सोच-विचार से प्रभावित लोग मानते हैं।' [21] उनका तो यह भी मानना है कि हमारी आधुनिकता कभी एक परंपरा है। हम अंग्रेजी के धक्के से आधुनिक नहीं होते हैं, नहीं हो गए हैं।

परंपरा सामुहिक मनुष्य मनीषा की उत्पत्ति हैं। परंपरा को हम साधना का पर्याय मान सकते हैं और वह इसलिए क्योंकि वह निष्ठा आस्था और विवेक से अर्जित करनी पड़ती हैं। शायद यहो सब कारण से कवि अशोक वाजपेयी परंपरा से जोड़ते हैं, अपनाते हैं, यहाँ तक कि आधुनिक होने के लिए भी परंपरा से सम्पर्क आवश्यक मानते हैं। परंपरा हमें हमारी अस्मिता को पहचानने में मदद करती हैं। यह तभी सम्भव होता है जब परंपरा हमारे लिए अर्जित किया गया अनुभव बन जाती हैं। और इस तरह की परंपरा हमें दिशा निर्देश करती हैं। परंपरा से कटकर न हम आधुनिक बन सकते हैं और न ही विकास सम्भव होता है। अत: परंपरा को नकारा नहीं जा सकता है। परंपरा आज के युग में हमें अनुभव और मुल्य की गहराई का आयाम देती है कारण परंपरा अर्थात अनुभव समष्टिगत, जातिगत, युग-युगान्त संचित है। अनुभव हमेशा विकासशील होता है वह कोई जड़पिंड नहीं।

कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ इसका साक्ष्य हैं। वे अपनी कविताओं में जो नहीं है उसे पुकारता है। कवि अपनी कविताओं के माध्यम से उसे छूँते हैं जो आगे होगा फिर कविता द्वारा जो आत्मा में वसा है उसे खोजते हैं। 'अपना सारांश बन गई चट्टान' शीर्षक कविता में कवि यहीं कुछ कहना चाहते हैं —

'हम पुकार रहे हैं उसे जो नहीं है

हम छु रहे हैं उसे जो कभी आगे होगा

हम खोज रहे हैं उसे जो हमारी आत्मा में बसा है।' [22]

यहा उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने परंपरा तो कभी रूढ़ीवादी ढंग से नहीं अपनाते हैं। कवि अशोक अपनी कविताओं में परंपरा को एक अवधारणा के रूप में लेते हैं और उस अवधारणा को परंपरा के नवीकरण की अवधारणा के रूप कहा जा सकता है। क्योंकि कवि अपनी कविताओं में भारतीय परंपरा को प्रमाणित करते हैं, उसकी प्रासंगिकता को सिद्ध करते ह। फिर एक ओर नया भावबोधसे नया परिवेश, नई जीवन दृष्टि से परिचित करते हैं। दुसरी ओर वही अपनी परंपरा के प्रमुख तत्वों के साथ प्रयोगशीलता का समाहारभी है। यह सही है कि बिना सचेत नहीं जा सकते। हम सचेत और जागरुक होकर ही परंपरा के मूल्यवान तत्वों को ग्रहन कर सकते हैं, परंपरा का विकास कर सकते हैं। वस्तुत : कवि अशोक वाजपेयी के लिए न तो सभी परंपरा या सम्पूर्ण प्राचीन त्याज्य है और न ही सभी नयी चीज आदरणीय है। कवि अशोक वाजपेयी इसलिए अपने समय के उन सबको अभिषक करना चाहता है अपने समय के थपेरे से घायल हाथों से जो कालातीत है। जाहिर सी बात है 'काल के प्रतिघात के बावजूद समय के पार बचे रहना' फिर 'कालातीत होना' सबके वश की बात नहीं है या हर चीज, हर काम के लिए सम्भव नहीं। तो कवि अशोक वाजपेयी जो शर्त लगाया है यह बहुत महत्वपूर्ण बात है और इसी से परंपरा को लेकर जो उनकी दृष्टि और विचार रहा है वह स्पष्ट हो जाता है। वे अपने समय के सब कुछ को सही और तर्कसंगत नहीं मानते हैं और जो अतीत के हैं वह भी सबके सब अच्छाही है यह भी नहीं कहते हैं। यह जो उनका विचार है उनकी कविता 'रजा का समय' शीर्षक में देखा जा सकता है, कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'हम उस बचे हुए से,
जो समय के पार बचा रहेगा
काल के प्रतिघात के बावजूद,
उसका अभिषेक करते हैं —
समय से घायल हाथों से हम
जो कालातीत हैं
उसका अभिषेक करते हैं।'

कवि अशोक वाजपेयी उस परंपरा को स्वीकारते हैं, अपनाते हैं जो हमारी विकास प्रक्रिया में बाधा न डाले और मानव जीवन को उदात्त बनाने में मददगार साबित होते हैं। कुछ ऐसे ही प्रसंग में यतीन्द्र मिश्र से वार्तालाप के दैरान कवि अशोक वाजपेयी जो कहते हैं यह उद्धृत किया जा रहा है जिससे उनके विचार आसानी से समझा जा सकता है — 'परम्परा हमारे यहाँ परिवर्तन के विरुद्ध नहीं खड़ी होती। वह निरन्तर परिवर्तनशील, लगातार अपना नवीनीकरण कर पातीं हैं, तभी परम्परा है। इधर अन्तर इतना भर आया है कि पहले आप स्वाभाविक रूप से परम्परा में होते थे, अब आत्मचेतन रूप से परम्परा में होते हैं। मेरे मन में निरन्तरता का निरन्तर उपस्थिति का बहुत गहरा आकर्षण है। मुझे लगता है कि समकालीनता भी इस निरन्तरता का ही एक आयाम या विस्तार है। इसे बहुत आसानी से हम अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में देख सकते हैं : वहा परम्परा और आधुनिकता एक साथ हैं और उनमें कोई बैर नहीं ह। मेरी कविता इस अदम्य मानवीय निरन्तरता का अवगाहन करने की चेष्टा है — उसमें रचने का आशय इस निरन्तरता में इजाफा करना हैं। जो पहले था वैसा अब नहीं है लेकिन जो अब है वह पहले भी रहा है। मेरी धारणा है कि रचना एक साथ, परम्परा और आधुनिकता के चालू युग्म से परे अपनी अद्वितीयता और अपनी निरन्तरता खोजना और पाना हैं।' [23] कवि अशोक

वाजपेयी परंपराहीन समसामयिक परिवेश को देखकर चिन्तित भी होते हैं। कवि अशोक वाजपेयी की कई कविताओं में उन्हें इस तरह से चिन्तित नजर आते हैं। अपने समय में भारतीय सनातन-संस्कृतियों पर जो आघात हो रहे हैं। धीरे धीरे बहुत सारी अमुल्य संस्कृतियाँ विलूप्त होते जा रहे हैं, हालाँकि उन सबकी प्रासंगिकता और प्रयोजनीयता आज भी है इन सब बातों को लेकर कवि काफी मर्माहत तथा परेशान होते हैं। जिसका प्रमाण उनकी ढेर सारी कविताएँ हैं। मिसाल के तौर पर उनकी 'अब बचा ही क्या है' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखा जा सकता हैं —

'अब बचा ही क्या है:
आँसू, फूल, पत्थर, पंख और शब्द
पुस्तकें और छवियाँ —
कोई नहीं जानता कि नदी सूख गई है;
किसी को खबर नहीं कि खिले होकर भी फूल ने मुँह मोड़ लिया है।
आगे का अँधरा पीछे के सारे उजाले को लीलकर
ओझल कर रहा है,
अप्रत्याशित का भय आत्मा से ऐसे चिपट गया है
जैसे किसी वृक्ष के तने से छाल।' [24]

परंपरा हीनता के, प्रमाण के रूप में वह कविताओं में, साहित्य में पड़ोस की अवधारना का लोप हो जाना मानते ह। वे कहते हैं कि जिस तरह से पड़ोसहीन समाज में अर्थात अतोत या भविष्य से काटकर हमें जीने के लिए विवश किया जा रहा है यह हमारे लिए और मानवीयता के घातक है। उनकी भाषा में — 'अधिकतर समुदायों से पड़ोस की अवधारना लोप हो चुका है, किसी तरह के अतीत या

भविष्य से काटकर हमें एक शाश्वत वर्तमान में रहने पर एक तरह से विवश किया जा रहा हैं।' [25]

परंपराहीन अर्थात परंपरा से कटा हुआ मानव-समाज की कल्पना कतई ठीक नहीं होगा क्योंकि व्यक्ति तथा मानव समाज का संतुलन बनाए रखने के लिए परंपरा अत्यन्त जरुरी है वह परंपरा जहा मानव चेतना के आदिम और अधुनातन स्तरों के बीच संवाद बना रहे। हमें परंपरा की प्रवाहमानता से परिचित होना चाहिए जिससे पुरानी परंपरा नहीं परंपरा के साथ मिलकर एक नयी परिकल्पना को जन्म दे सके। इस दृष्टि से कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'पलटकर' शीर्षक से कविता काफी दिलचस्प और विचारोत्तेजक कविता है। कवि इस कविता में वर्तमान के झरोखे से भूत-भविष्य को देखते हैं। आखिर कवि यह निर्णय लेते हैं कि मैं पलटकर पीछे की ओर तो देखना चाहता हूँ मगर उसे नहीं जो हो चुका है, घट चुका है। कवि अशोक वाजपेयी पलटकर उसे देखना चाहता है जो आग होनेवाला है। और पलटकर देखने की जरुरत कवि इसीलिए महसूस करते हैं क्योंकि जो आगे होनेवाला है वह पीछे भी होगा। कवि के इन विचारों का तात्पर्य यह हो सकता है कि आगे जो भी होगा या होनेवाला है वह अचानक नहीं है उसका तार पीछे से जुड़ा हुआ है या उसका जड़ मूलत : पीछे अर्थात अतीत में हैं। स्पष्टत : कवि यहाँ परम्परा के प्रयोगशीलता की ओर ध्यान खींचना चाहता है क्योंकि जो हो चुका है वही महत्वपूर्ण नहीं है जो घटनेवाला है वह भी उतना ही महत्वपूर्ण है। कवि के लिए जो बीत चुका है वही इतिहास नहीं जो होनेवाला है, जो होगा वह भी इतिहास है। कुछ पंक्तियाँ —

'मैं पीछे पलटकर देखना चाहता हूँ
उसे नहीं जो पहले हो चुका
बल्कि उसे जो आगे होनेवाला है :
पलटकर इस लिए कि जो आगे हो

वह आखिरकार पीछे होगा,

जो बीत चुका वही इतिहास नहीं है,

जो होगा वह भी इतिहास है।' [26]

जबकि समसामयिक साहित्यिक परिवेश में या कुछ अरछे से परंपरा के प्रति कोई उत्साह या आकर्षण नहीं रहा है। बहुत सारी चीजे, जो हमारी है या था जो कि रोजमर्रा की जिन्दगी का हिस्सा था जिसकी आज भी वैसा ही महत्व है मगर हम में से गायब होता जा रहा है, लूप्त होता जा रहा है। बदलाव के नाम पर हम ऐसा कर रहे जब कि ऐसा करना हमारे लिए या कि मानव-समाज के लिए घाटे का सौदा है। कवि अशोक वाजपेयी इन सबकी ओर हमारी दृष्टि लौटाना चाहते हैं। इन्हीं विचारों से पूष्ट उनकी 'सागर में हाशिए पर' लेख से कियदांश उद्धृत किया जा रहा है — 'मुझे लगता है बीसवीं शाताब्दी ने अपने समापन तक पहुँचते-पहुँचते क्रान्ति, विचार धारा, आश्चर्य वृत्ति रहस्यबाद और आत्म सन्देह को हाशिए पर डाल दिया। अपने देश में अहिंसा, गरीबी, समता महत्मागाँधी और जवहरलाल नेहरू हाशिए पर चले गये। भले हम किसी जनमत संग्रह में गाँधी को सहस्त्राब्दी पुरुष चुनले पर अपने सार्वजनिक जीवन और व्यवहार में गाँधी एक अप्रासंगिकता है : उनकी दृष्टि और युक्तियों को हमने जान बूझकर अपने राजनैतिक और आर्थिक जीवन से देश निकाला दिया है। इसी तरह परम्परा रसिकता तादात्मय, छन्द और आस्था भी हमने हाशिए पर रख दी है। परम्परा के बजाय दूरी, छन्द के बजाय आपा धापी और आस्था के बजाय छिछली धार्मिकता अब केन्द्र में हैं। हमारी स्मृति क्षीण हो रही है, हमारी संस्कृति दृष्टि बौद्धिक व्यापार से अपदस्थ की जा चुकी है, अध्यात्म प्रगति विरोधी अवधारणा मान लिया गया है, समयातीत निरा वाग्विलास है और मनुष्य के चरम प्रश्न अब बुद्धि और सृजन के केन्द्र में नहीं है। हम बेहद भय भीत लोग है जिनके पास किसी तरह का अभय शेष नहीं हैं।' [27]

हो सकता इसके पीछे आधुनिक जटिल परिस्थितियों के मुकाबला करने में परंपरा की भूमिकाओं को लकर सन्देह रहा हो। मगर आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी इस दृष्टि में असहमत है उनका तो मानना हे परम्पराएँ हमें जटिल से जटिल परिस्थितियों का मुकाबला करने में कौशल और बल प्रदान करती हैं। कई बार पुराने अनुभव यानी परम्पराएँ हमें वर्तमान की बहुत सी समस्याओं को सही ढंग से सुलझाने में सहायक सिद्ध होते हैं पर यह तभी सम्भव हो पाता है जब हम विवेक सहित तर्क के साथ उसका मुल्यांकन करते हुए ग्रहण करें। कवि अशोक वाजपेयी यह जानते हैं कि हमारा जो भारतीय संस्कृति और परिवेश है वह एक तरफ परिवर्तनशील है तो दुसरी तरफ वह कहीं न कहीं एक सनातन परिवेश भी। कवि की इस बात का जो मंशा है वह स्पष्टत: यह है कि हमारी संस्कृति और परम्पराएँ सबके सब एक दम-से सही शुद्ध है वह नहीं है, उसमें कुछ न क़छ ऐसा भी रहा है जो बुरा है जिसे हमें पहचानना चाहिए और त्यागना चाहिए। कवि अशोक वाजपेयी मूलत : अपनी कविताओं में एक अवधारणा के बतौर परंपरा के जरिए इन दोनों के बीच के तनाव और द्वंद्व को छूँने की कोशिश करते ह। उनके शब्दों में — 'हमारा एक परिवर्तनशील परिवेश और किसी हद तक एक सनातन परिवेश दोनों हैं — इन दोनों के बीच के तनाव और द्वंद्व को छूने की कोशिश मैं करता रहा हूँ। [28] कवि अनुभव करते हैं कि जो पुरानी धारणाएँ और मान्यताएँ वर्तमान समाज के लिए मददगार और हीन साधन करनेवाला है उसे हमें सहर्ष स्वीकारना चाहिए। जो परम्पराएँ हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में सार्थक सहयोग दे रही है उसे कबुलना चाहिए। आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार मानव और मानव समाज को जीने के लिए थोड़ा-सा ही सही इतिहास अर्थात परम्परा चाहिए। वह भी इतना-सा जितना कि नल से अगर पानी नहीं आ रहा है तो चुल्लू भर पानी से मुँह धोया जा सकता है। फिर कवि यह भी कहते हैं

कि हमें जीने के लिए इतना-सा हविहास चाहिये जैसा कि थोड़ा-सा सच और थोड़ा-सा सपना चाहिए। यह जो विचार कवि अशोक वाजपेयी की कविता में अपने गम्भीर और इत्मीनान से कहते हैं कि हमें जीने के लिए थोड़ा-सा ही सही मगर इतिहास (परम्परा) चाहिए ही चाहिए। वैसा ही जैसा कि जीने के लिए सच और सपना की जरुरत होती है। जाहिर-सी बात है कवि के अनुसार बिना इतिहास या परम्परा के प्रति जो स्वैया रहा है जैसा कि जीने के लिए सच और सपना की जरुरत होती है। जाहिर-सी बात है कवि के अनुसार बिना इतिहास या परम्परा के हम जी ही नहीं सकते। लिहाजा इस कविता के माध्यम से कवि के परम्परा के प्रति जो स्वैया रहा है उससे परिचित होने के साथ-साथ मानव और मानव-समाज के लिए परम्परा का महत्व और गुरूत्व के बारे में भी जानकारी सम्भव हो पाता है। कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'हमें थोड़ा-सा इतिहास चाहिऐ
बस इतना कि
जैसे नलके में पानी न आ रहा हो
तो चुल्लू-भर पानी से मुँह धोया जा सकता है।
ज्यादा इतिहास पुस्तकों-पोथियों और
पुरानो इमारतों के पास है।
हमारी जिम्मेदारी तो इस आड़े तिरछे समय में
किसी तरह
बचे रहने की है,
इतिहास बनाने-बचाने का जिम्मा
सौभाग्य से हम पर नहीं हैं।
जीने के लिए थोड़ा इतिहास चाहिये

जैसे थोड़ा-सा सच

और थोड़ा-सा सपना।' [29]

कवि अशोक वाजपेयी स्पष्ट भाषा में कहते हैं कि परपंरा से सम्पर्क साधे बिना कोई कवि, कवि ही नहीं बन सकता हैं। वजा फरमाते हैं कवि अशोक वाजपेयी क्योंकि दुनिया में ऐसा कोई कवि नहीं होगा जो पहले कोई दूसरे कवि की कविता न पढ़ा हो, या कविता क्या है बिल्कुल उसे पता ही नहीं था अचानक झट से कवि बन गये हो। स्पष्टत: ऐसा न कोई हुआ होगा और न हो सकता है। कवि अशोक वाजपेयी 'दुनिया को' शीर्षक अपनी कविता में दुनिया को एक पुरानी पुस्तक से तुलना करते हुए वे कहते हैं कि इस दुनिया रूपी पुस्तक के पीले पन्ने से नए छापे की गन्ध आती है। फिर यह दुनिया रूपी कविता-संग्रह को अगर कोई ध्यान से देखे तो स्पष्ट देख सकता है कि हर कविता की इबारत के नीचे कई और इबारतें अर्थात पंक्तियाँ तह-दर-तह दबी हुई ह। तात्पर्य यह हुआ कि कोई भी कविता या इबारत स्वयंभू नहीं है बल्कि सापेक्ष है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'वे लोग होते हैं
जिनके हाथ दुनिया की असंख्य इबारतों में से कुछ
आधी-अधूरी लग जाती हैं
और दुनिया उन्हें यह दावा करने देती है
कि वे उसकी रची इबारतें हैं।
ध्यान से देखनेवाले को साफ समझ में आता है
कि हर कविता की इबारत के नीचे
कई और इबारतें तह-दर-तह दबी हुई हैं।' [30]

इस प्रसंग में कवि कहते हैं — 'देखा जाय तो भले कितने ही नए ढंग और प्रगल्भ दुस्साहस से हम कविता क्यों न लिखे, उसमें कहीं न कहीं पूर्वज बोलते हैं: जिसमें पूर्वज नहीं बोलते हैं उस कविता के टिकाऊ होने में मुझे सन्देह होता है। मैंने थोड़ी बहुत चेष्टा की कि मेरी कविता पूर्वजों की उपस्थिति और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता को अपने स्वाभाविक गठन में ही ध्वनित और अन्तर्ध्वनित करे।' [31]

इन्हीं के आधार पर कवि यह भी कहते हैं कि कवि का काम कोई नया संसार बनाने का उतना नहीं जितना बना हुआ संसार के बरक्स एक प्रति संसार रचना है —'मेंरा मत रहा है कि हमारे समय में कवि का संसार को सहेजना-समझना उतना नहीं जितना दिए हुए संसार को बरक्स एक प्रति संसार रचना हैं।' सिर्फ कविता ही क्यों? साहित्य के हरएक विधा के लिए यही बात है। हम से पहले अर्थात पूर्वजों नें जो किया ह, उत्तराधिकार के हिसाव से जो कुछ प्राप्त होता है उससे हम सिख लेते हैं फिर वहाँ से आगे की ओर बढ़ते हैं। अर्थात साहित्य में नये अनिवार्य है। कई भी विधा में प्रतिमान कहा से निर्माण किया जाता है वही जो कुछ पुराना मौंजुद है उसी से। मिसाल के तौर पर यदि हम आलोचना की बात करे तो आलोचना के जो प्रतिमान आज का बना हुआ नहीं है वह पहले से बनता-बना आ रहा है।

फिर 'शोध' की ही अगर बात की जाए तो 'शोध' की जो प्रविधि है वह आज से बहुत पहले बनाया गया है। अवष्य समय के साथ-साथ इसमें परिवर्तन और परिबर्धन हो रहा और होना ही है। क्योंकि सभ्यता के विकास के साथ साथ हमारे अनुभूतियों का क्षेत्र भी विकसित होता जाता है। यहाँ उदाहरणार्थ कवि अशोक वाजपेयी की एक महत्वपूर्ण कविता 'पीछे-आगे' शीर्षक की चर्चा कर सकते हैं। इस कविता में कवि के इन विचारों को स्पष्ट देखा जा सकता है जैसा कि शीर्षक ही उन्होंने रखा है — 'पीछे-आगे' अर्थात जो पीछे था वही फिर आगे

आनेवाला है। कवि का कहना है कि जो कुछ पहले हो चुका है और हमें लगता है कि वह बात हो चुका है हालाँकि वह बीतता नहीं है घूमा-फिरा कर वही सब आगे भी होनेवाला है। अगर कहीं नहीं तो कविता में ही सही क्योंकि कवि अशोक वाजपेयी इस पर जोर लगाते हैं कि पीछे का जो आगे होने वाला है वह हू-ब-हू उसी रूप में नहीं कुछ तो हेरा-फेरी अर्थात बदलाव होगा ही —

'इतिहास भी अपने को हू-ब-हू दुहराने से रहा —
कुछ तो वह भी भूल जाएगा या बदल देगा,
जैसे कविता अगर फिर से होने का अवसर पाए
तो कई शब्द, बिम्ब बदल ही जाएँगे।
बीतता कुछ भी नहीं है, बदल जाता है,
मामूली हेरफेर होता है,
और अपने को आगे जारी रखता है जो पीछे था।' [32]

कवि अशोक वाजपेयी मूलत : इसी बात को बार बार दोहराते हैं कि हम यदि कुछ भी हो। लेकिन इस 'हम' में हमेशा पूर्वज (परंपरा) मौजुद है उसे हमें स्वीकरना चाहिए। अन्य नहीं कवि अशोक वाजपेयी की परम्परा-आधारित कविताओं को थोड़ा-सा ध्यान से पढ़ने पर पता चलता है कि बहुत सारी बातें या चीजें हैं जिसे हम सचराचर उतना महत्व नहीं देते हैं या तो मामूली समझते हैं हम से छूट रहे हैं जिसे हम भूलता जा रहे हैं उन सबको याद दिलाते ह। उन सबका महत्व समझ में आता है। अत: यह स्पष्ट है कि कवि अशोक वाजपेयी की इन कविताओं को पढ़ते हुए उनकी परंपरा-सम्बंन्दित विचारों और दृष्टि से तो परिचित हो ही जाते हैं फिर पढ़ने वाले में भी एक तरह से परम्परा को लेकर तनाव-सा पैदा होता है जो आगे एक दृष्टि, विचार या भावनाओं को जन्म देने में सक्षम होता है।

निष्कर्ष :

कवि अशोक वाजपेयी की परम्परा से जुड़ी हुई कविताओं, आलोचनाओं या व्याख्यान और कथन सब कुछ को देखते हुए, जाँचते-परखते और मन्थन करते हुए परम्परा सम्बंधी उनकी विचार, दृष्टि रवैया और उपलब्धि को कुछ यों निम्नलिखित रूप में देखा समझा जा सकता है — परम्परा से कवि अशोक वाजपेयी का सम्बंध भावनात्मक रूप से हैं। न कि सिर्फ दिखाने भर के लिए। कवि अशोक वाजपेयी का मानना है कि परम्परा को त्यागकर या परम्परा से सम्पर्क साधे बिना न अच्छे कवि बन सकते हैं न ही अच्छे मानव। क्योंकि उनका मानना है कि एक अच्छे मानव बनने का या कि एक अच्छे कवि होने का जो रहस्य या गुढ़ है वह परम्परा में निहित है। कवि अशोक वाजपेयी एक परम्परावादी कवि नहीं है वे परम्परा के अनुरक्त और अनुग्रहीत कवि हैं। वे अतीत को वर्तमान के साथ जोड़कर भविष्य की ओर देखने वाले कवि हैं। कवि अशोक वाजपेयी परम्परा के नवीनीकरण के मतवाद पर विश्वासी कवि है। उनका मानना है परम्पराएँ हमें वहाँ तक स्वीकार्य है जहाँ तक वह प्रगति या विकास में बाधित न हो। तो कवि अशोक वाजपेयी एक प्रयोगशील परम्परा के कवि हैं। वे परम्परा को अपनी प्रयोगशाला में परीक्षा करने के बाद ही प्रयोग करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में यह साबित करते हैं कि हमारी परम्पराएँ अथवा हमारी भारतीय संस्कृति अच्छी है और उसमें आज भी इतनी सारी अच्छाइयाँ है जो हमें मानव जीवन का रहस्य को छूँने के लिए फिर मानवीयता को उत्जीवित करने और रखने में प्रेरक तत्व के रूप में कारगर साबित हो सकता है। इसी के चलते वे कहते हैं कि दरअसल परम्परा और आधुनिकता में वैसा बैर है ही नहीं जैसा कि हम सोचते हैं। क्योंकि हमारी सारी परम्परा संस्कृति बहुलता पर आधारित ही है।

अत: यह स्पष्ट है कि कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में भारतीय परम्परा के गतिशील तत्वों को पहचाना है और फिर आवश्यकतानुसार उन सबका सचेत ढंग से भरपूर उपयोग भी किया है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि कवि अशोक वाजपेयी एक आधुनिक मुर्धन्य कवि हैं उनकी कविताएँ बल्कि उनका समूचा साहित्य आधुनिकता की एक ऐसी परिपक्क और परिपुष्ट दृष्टि का सृजन करती है जिसका जड़ भारतीय भावभूमि या भारतीय संस्कृति ही है। जाहिर है उनकी कविता हमें उन सबसे भी परिचित कराती है जो राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर पर जीवन मुल्यों के रूप में घटते-बदलते रहे हैं।

काव्याभिव्यक्ति के विविध स्वरूप

कविता अन्ततः जीवन की अभिव्यक्ति है। व्यापक सन्दर्भों में कहा जाय तो कविता या साहित्य जीवन की ही पुनः सृष्टि है। कविता के माध्यम से कवि मूलतः प्रकारान्तर से हमें हसी जगत से साक्षात्कार करता है जिस जगत में हम भी रहते हैं। कवि इसी दृष्टिमान जगत को और उसके अनुभव को बिन्यस्त करते हैं जिसका हम भी सामना करते हैं मगर कवि अपनी प्रतिभा और सूक्ष्म-संवेदनशीलता के रहते कलात्मकता से अभिव्याक्त करता है। काव्यालोचन में जिसे 'सम्प्रेषण' कहा जाता है। और यह सम्प्रेषण का प्रश्न कविता के लिए या काव्य-आलोचना की मुख्य समस्या है। जो भी हो अभिव्यक्ति के मूल में यही सम्प्रेषणीयता की भूमिका प्रस्तुत रहती है। मानव-जीवन सम्बंधी विविध अनुभव-अनुभूतियाँ साथ ही प्रकृति या जगत के विभिन्न उपादानों, आयामों और अवयवों को कवि अपनी प्रतिभा के ढलपर किस तरह की कलात्मकता के साथ चित्रण करता है यह सब निर्भर करता है कवि की दृष्टि अभिरूचि, चिन्तन तथा संवेदनशीलता के ऊपर। कवि यह सहृदयों तक उसको अभिव्यक्ति के द्वारा ही पहुँच पाती हैं। और इस तरह से जीवन, जगत अथवा प्रकृति सम्बंधी गहन अनुभूति की सशब्द और कुशल अभिव्यक्ति के लिए कवि विविध उपाय तथा स्वरूपो का उपयोग करता हैं जब कि तभी वह सफलता पूर्वक सम्प्रेषणीयता की क्षमता धारण कर पाती है। फिर ऐसा करना ही सच्ची कला-सृष्टि और सफल कवि की पहचान है।

आधुनिक कवि आलोचक अशोक वाजपेयी एक सफल कवि है। उनकी यह सफलता उनकी कविताओं के भाव पक्ष तथा कला पक्ष या कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से स्वीकार्य है। शिल्प का सिधा सम्बंध कविताओं में विन्यस्त अनुभूति

के अभिव्यक्ति पक्ष से हैं। जैसा कि कविता के लिए अनुभूति तथा संवेदना से कही ज्यादा महत्व अभिव्यक्ति या सम्प्रेषण विधि की हैं। इसका मतलब यह भी नहीं है कि कविता के लिए अनुभूति या संवेदना जरुरी नहीं ह। हालाँकि कविता एक जटिल मामला है। अन्य सभी कलाओं विशेषत: ललित कलाओं से तुलनात्मक रूप में अभिव्यक्ति और सम्प्रेषणीयता की प्रक्रिया कविता कहीं अधिक जटिल होती है। कवि अशोक वाजपेयी भी ऐसा ही मानते हैं-- 'बिना रूप तत्व के कविता नहीं हो सकती जैसे कि बिना भाषा के भी वह संभव नहीं। पर निरा रूप तत्व या निरी भाषा कविता हो सकने के लिए काफी नहीं है। बिना दृष्टि के बिना बैचारिकता के बिना साहस के भी कविता संभव नहीं। भाषा कविता के रूप में गाती है, सपना देखती है, याद करती है और जीवन को सहेजती है। पर ऐसा बिना संवेदना और बुद्धि के संभव नहीं। लेकिन उतना ही सही यह भी है कि निरी दृष्टि या विचार से कविता सम्भव नहीं है। एक इस्पाहानी कवि ने कहा कि कविता तुकों का नहीं साहस का मामला है -- अगर साहस की तुक भी मिल जाये तो क्या बात है? कविता खासी जटिल और संगुम्फित संरचना है और उसे आसानी से मोटे-मोटे विभाजनों में नहीं देखा-परखा जा सकता। कविता हर स्तर पर, फिर वह रचना का हो या आस्वाद का या विश्लेषण का, एक तरह की समग्रता की माँग करती है, और उसका रसायन ही ऐसा है कि किसी तत्व की प्रमुखता को लेकर सामान्यीकरण करना लगभग एक कविता विरोधी बात है।' [33]

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति तथा सम्प्रेषणीयता को लेकर अत्यन्त सजग दिखाई देते हैं। आधुनिक चेतना के कवि अपनी कविता में शिल्प के स्तर पर प्रयोग करने की आवश्यकता को गहराई से महसूस करते हैं। परिवर्तनशील समाज में नये अनुभव और परिवर्तन संवेदना को व्यक्त करने के लिए ऐसा करना वे जरुरी समझते हैं। अत: कवि अपनी किवताओं के सम्प्रेषणीयता के

लिए अभिव्यक्ति के विविध माध्यमों में बहुत से प्रयोग करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी कविता की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग का सहारा लेता है वहाँ भी परंपरा को एकदम से नकारते नहीं हैं। परम्परा और प्रयोग की सन्तुलित भूमिका सम्प्रेषण की प्रक्रिया को सहज और सरल बनाती हैं। प्रयोग केवल प्रयोग के लिये ही न हो। इसे लेकर कवि काफी सतर्क हैं। उनका मानना है कि 'शिल्प, साहित्य का अन्त:करण है जो सबसे पहले बोलता है, वह च कसी करता है कि आप क्या कर रहे हैं।' [34] कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार एक कवि के लिए कविता में सिर्फ विषय को लेकर नहीं हालाँकि भाषाशैली को लेकर हमेशा आत्मसंघर्ष जरुरी है। अगर ऐसा नहीं हो रहा है तो कवि अशोक वाजपेयी उस कवि के और उनकी कविताओं की टिकाँऊ को लकर सन्देह व्यक्त करता हैं। कवि कहते है 'कविता में ऐसे किसी संघर्ष को प्रामाणिक या विश्वसनीय नहीं माना जा सकता जो सिर्फ विषय के रूप में हो पर जो उस की काया में अर्थात शिल्प में प्रकट न हो।' [35] हालाँकि कवि साहित्य में कला को अधिक महत्व देते है विषय को कविता का अर्थ नहीं मानते हैं (कवि रचना में अन्तध्वनियाँ और जातीय स्मृति को अर्थात परम्परा के महत्व को अनुधावन करते हैं गुरुत्व को स्बीकारते हैं। उनका कथन है – 'मैं साहित्य में कला को महत्व देता हूँ, विषय को कविता का अर्थ नहीं मानता और जिस रचना में अन्तध्वनियाँ और जातीय स्मृति न हो उसे विचारणीय नहीं समझता।' [36] कवि अशोक वाजपेयी की कविता में हमें परम्परागत तत्व और आधुनिक संवेदना दोनों साथ साथ दिखाई देते हैं। और इन सबका प्रयोग वे प्रयोग की कसौटो पर कसते हुए करते है। वैसे भी कवि अशोक वाजपेयी साहित्य मे जनतन्त्र की वात करते है, कवि लेखक की बहुलतावादी दृष्टियों की हिमायती है। जिसके चलते कवि किसी विचारधारा रूढ़ि पूर्वग्रह अथवा बन्धन से अपनी काव्याभिव्यक्ति को आक्रान्त नहीं होन दिया है।

हिन्दी कविता में अभिव्यंजना के बदलते हुए स्वरूप और प्रतिमान को ध्यान में रखते हुए काव्य में अभिव्यक्ति के विविध स्वरूप और उपादानों–भाषा, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक– आदि को लेकर कवि अशोक वाजपेयी की कविता का एक सम्यक विवेचन करते हुए उसमें निहित कलागत सौन्दर्य का उदघाटन यहाँ किया जा रहा है।

शब्द–योजना :

भाषा ही वह साधन है जिसके माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति की जाती है। अर्थात भाषा भावों को मूर्त रूप प्रदान करती हैं जिससे कविता के स्वरूप निर्धारण होता है। अत: काव्याभिव्यक्ति का मूल घटक भाषा ही है और भाषा की मूल इकाई 'शब्द' है। 'शब्द' को लेकर कवि अशोक वाजपेयी बेहद संवेदवशील और चौकन्ना है। कवि अशोक वाजपेयी एक आधुनिक प्रयोगशील दृष्टि सम्पन्न कवि है। इस दृष्टि का प्रभाव उनकी कविताओं में भो देखा जा सकता है। नये शब्द की खोज और शब्द को नया संस्कार देना उनकी प्रयोगशील दृष्टि का एक प्रमूख पहलू हैं। कवि अपनी कविताओं में बहुत सारे नये शब्द को पहलीबार कवितामें स्थान देते हैं और इसे अपना कवि धर्म समझते हैं। वे कहते हैं – 'शब्द से कविता गढ़ना और कविता के लिए उपयुक्त और नए शब्द खोजना–गढ़ना सच्चे कवि कर्म का जरूरी हिस्सा है।' [37] कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में एक प्रमुख सरोकार के रूप में शब्द साधना को स्थान देती है। उनकी कविता 'खाली हाथ' शीर्षक की पंक्तियाँ इस बात की पुष्टी है —

'मैं अपनी छेनी लिये
पिछवाड़े की थोड़ी–सी जगह में
भाषा का एक नया स्थापत्य गढ़ने की
विफल चेष्टा में व्यस्त था।

समारोह समाप्त होने को है,

ध्वजाधारी अश्वारोही वाद्यवृन्द के साथ,

वापस जा चुके हैं :' [38]

जानेमाने आलोचक नन्द किशोर आयार्य भी ऐसा ही विचार प्रकट करते हैं कि कवि अशोक वाजपेयी की कविता में शब्द को पुन : एक विश्बसनीयता देती है और जिसमें से पवित्रता की खनखनाहट सुनाई देती है। उनके शब्दों में —'अशोक वाजपेयी की कविता समय के धूल-धकखड़, खून-कीचड़, राख से जलने या भस्म होने से बचे हुए शब्द उठाकर उनमें पवित्रता की खनखनाहत सुनती है और इस प्रकार शब्द को पुन: एक विश्वसनीयता देना चाहती है — अपने समय के बरक्स इस आकंक्षा और कोशिश में ही तो कविकर्म को सार्थकता है।' [39] 'मैने पार्थना की कविता पंक्तियाँ —

'अब मैं धूल-धक्खड़, खून-कीचड़ राघ से

शब्द उठाता हूँ

अभी भी जलने या भस्स होने से बचे हुए

और कान लगाकर सुनता हूँ

उनमें पवित्रता की खनखनाहट

जिसे, छोटी छोटी क्रियाओं में

अभी भी समोया जा सकता है, बिना किसी देवकृपा के।' [40]

सच्चाइ तो यह है अशोक वाजपेयी की कविता भाषा का सतर्क और सृजनात्मक प्रयोग का श्रेष्ट उदाहरण है। 'शब्द' पर कवि अशोक वाजपेयी को अपरीसीम आस्था है, उनके लिए शब्द एक परम सच है। वह मनुष्य द्वारा परम आविष्कार है। और कविता शब्द का धर्म है। देखिए उनकी भाषा में - 'यो तो भारतीय दर्शन में शब्द को बहन माना गया है, पर मेरे लिए शब्द एक परम सच है।

शब्द से देह ही नहीं सारा संसार बल्कि समूचा अस्तित्व ही जागता है, सम्भव होता है। शब्द ईश्वर प्रदत्त नहीं है – वह प्राकृतिक भी नहीं है, वह मनुष्य का आविष्कार है। शब्द ही कवि का ईश्वर है। उससे अलग ईश्वर की दरकार नहीं। कविता शब्द का धर्म है। कविता को अलग से किसी और धर्म की जरुरत नहीं। जो कवि शब्द को नहीं साधता वह जीवन को नहीं साध-सकता। शब्द पर आस्था जीवन पर आस्था का ही रूप है।' [41]

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता में कुशल अभिव्यक्ति तथा सफल सम्प्रेषणीयता के लिए न जाने कितने शब्द गढ़ते हैं उसी के साथ कितने भूले-बिसरे शब्दों को जो यादों के गह्वर में गुम दोगरी थे। पुनः आविष्कार करते हैं। इस तरह से नये शब्द को गढ़ना तथा पुराने शब्दों का आविष्कार की आवश्यकता कवि इसलिए अनुभव करते हैं क्योंकि समय के साथ-साथ संवेदना का विस्तार हो रहा है, उसका परिवेश लगातार विस्तृत होता जा रहा है लिहाजा शब्दों में साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ उनमें भरने की आवश्यकता कवि को महसूस होती है ताकि सम्प्रेषणीयता में कोई बाधा न हो। इस प्रसंग में हमेशा दुबे का कहना समीचीन लगता हैं – 'अशोक वाजपेयी के पास भाषा आकर स्बंय अपने आविष्कार की माँग करती है। अपने लेखक या काव्य में जितने शब्द अशोक जी गढ़ते हैं शायद ही कोई अन्य ऐसा करने में पाता हो। भाषा स्वयं अपनी प्रकृति में इतनी लचीली और बदलू स्वभाव की है कि वह कट्टरता बरदाश्त नहीं कर सकती.' [42]

अभिव्यक्ति के विविध स्वरूप के अन्तर्गत भाषा तथा कव्यात्मक शब्द-संगतियों की उदभावना के मामले में अशोक वाजपेयी कितना पारंगत और सिद्धहस्त है रमेश चन्द्र शाह की टिप्पणी से स्पष्ट हो जाता है। ना में कवि कितना अचुक और सिद्धहस्त है, इसके प्रमाण गिनाने की भी आवश्यकता नहीं है। वे तो यहाँ से वहां तक बिखड़ी पड़ी हैं और नये कवियों के लिये प्रत्यक्ष पाठ की तरह उनका

असंदिग्ध महत्व है। उनकी सजग और उनके स्वरीय शब्द संवेदना का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है जो उन्हें समकालीनों के बीच विशिष्ट बनाता है। नई कविता की विम्बात्मकता और युवा कविता की सपाटवायानी का उनके यहाँ सफल इकट्टा निर्वाह मिलता है। अशोक की कविता तो इस बात का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं कि शब्द का प्रत्येक समर्थउपयोक्ता उसे नया संस्कार देता ह। ''बूढ़ा शब्द'' ''प्राचीन शब्द'' जैसे मुहावरे यदि उनकी कविता में बार-बार लौटकर आते हैं तो इसी नये संस्कार वाली बात को रेखांकित और पुष्ट करने के लिए। ''टु प्योरीकाई टि डाइलेक्ट ऑव दि ट्वाइब'' - जैसा कि एलियट की प्रसिद्ध काव्य पंक्ति में कहा गया है। हर सच्चे कवि के कर्म की यही अच्छी प्रासंगिकता है जो तथाकथित युगधर्म के निर्वाह से कहीं बड़ी कसौटी है। अशोक की ही एक कविता की शब्दावली में इस बात को कहना इस लेख का भी उपयुक्त समापन होगा। यह शब्द का समर्थ उपयोग करनेवाली कवियों के ही कारण संभव हो पाता है कि,

'भाषा में लौटते हैं
सदियों से गुम हो गये
प्राचीन शब्द
.....
शब्द उठाती है
विसरा दी गई भूलों का गट्ठर
और अपने खून सने हाथों से माँगती है
जवाब...
समय उतारता है अपने लबादे
और दिगम्बर निहत्थे क्षण में
देवता लौटते हैं
गोधूलि में [43]

कवि अशोक वाजपेयी यह बात बार बार दोहराते हैं कि कविता भाषा से बनती हैं भाषा पर हमें ध्यान देना चाहिए। कविता में भाषा की अनेक संभावनाएँ हैं। उसकी उपयोग तथा प्रयोग कवि को करना चाहिए वरना सिर्फ विचार को प्रमुखता देना ही है तो गद्य में या अन्य माध्यम से भी किया जा सकता है उसके लिए कविता क्यों ? अत: कवि अशोक वाजपेयी का मानना है कविता हमेशा अभिधा का आतंक नहीं होना चाहिए भाषा की जो अन्य अनेक स्तरीय शक्ति है उसी को कविता में अधिक महत्व देना चाहिए। और ऐसा करने पर कविता में अभिव्यक्ति के स्तर पर विविधता और संभावनाएँ खो लेगी। देखिए इस प्रसंग में उनका विचार क्या है – 'भाषिक संरचना भी इस दौरान अधिकतर एक स्तरीय है अभिधा का ऐसा आतंक है और अपनी तोली के एक से अधिक अर्थ होने से कवि इतना घबराता है कि भाषा की अनेक शक्तियाँ कविता में अनुपयोज्य हो उठी हैं। अभिव्यक्ति में विविधता और संपन्नता का अकाल ही है। जहाँ सौन्दर्यबोध है, संरचना में जटिलता और अभिव्यक्ति में अर्थसमृद्धि है वहाँ अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि ऐसे रचनाकारों की सामाजिक प्रतिबद्धता मुखर न होने के कारण अनुपस्थित ही मानी जाती है। हिन्दी कविता की शब्द सम्पदा अपनी संभावना के अनुरूप बहुत नहीं है — बहुत कम शब्दों से कविता का काम चल रहा लगता है। कविता भाषा के प्रति जिम्मेदारी के बजाय तथा–कथित समाज के प्रति जिम्मेदारी के वश लिखी जा रही हैं। कवि भाषा के प्रति जिम्मेदार होकर ही सामाजिक जिम्मेदारी निभा सकता है। इस सीधी–सच्ची बात की इन दिनों पूरी तरह से अवहेलना हो रही है कि भाषा ही कवि की सामाजिकता है।' [44] हालाँकि हिन्दी भाषा शब्द–सम्पदा से भरपूर मगगर कविता में उस समृद्ध शब्द भण्डार का उपयुक्त और अधिकाधिक उपयोग किया नहीं जाता है। कवि अशोक इस खाई को गम्भरीता से लेना है और ढेर सारे पुराणी शब्द को अपनी कविता में पुन: स्थापन करते है। ऐसा प्रयोग उनकी कविताओं की

अधिक प्रांजल पारदर्शी और प्राभवात्मक बनाता है। 'दरवाजा खोलकर' शीर्षक कविता पंक्तियाँ इस तश्य को सही प्रमाणित करते हैं —

'बहुत सारे शब्द
आँस़ओं या पत्तियों की तरह झर चुके हैं,
जो कुछ शिलालेख की तरह विजाड़ित बचे थे
उन्हीं को पुराने सिक्कों की तरह बटोरते
वे चले गए।' [45]

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में अक्सर तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते हैं। यह उनका भारतोय संस्कृति से जो सम्बंध साधने का कोशिश हो सकता है, फिर तत्सम शब्दों में दर्शन और अध्यात्म जैसे गम्भीर मुददों से जुड़ने का भी। क्योंकि तत्सम शब्दों में वह शक्ति की संभावना अधिक रहता है कि गम्भीर से गम्भीर विचार को सहजता से स्पर्श किया जा सकता है। लेकिन नैसर्गिक प्रतिभा सम्पन्न कवि का कहना है कि मैं ऐसा कभी जानबुझकर नही करता हूँ यह अनायास आ जाता है। शायद कवि जो शब्दों से जूझता है उसी का परिणाम हो — 'मैं सोच विचार कर शब्दों को इस्तेमाल नहीं करता, मेरी कविता के शब्द मेरी स्मृतिका अंग हैं। मैं संस्कृत का अध्येता नहीं हूँ, पर फिर भी मुझे कभी-कभी कोई शब्द यकायक कौंधता है। वह कहा से आता है, यह मैं खुद नहीं जानता। कभी-कभी शब्द मैं गढ़ता अवश्य हूँ। मुझे लगता है कि शब्द एक रहस्य भी है, एक बरदान भी है, एक बाधा भी और एक सहुलियत भी है। कवि का बुनियादी काम अन्तत : शब्द से जुझना है।' [40]

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में सिर्फ तत्सम शब्दों का भरमार नहीं रोजमर्रा की जिन्दगी से भी वे शब्दों को उठाते हैं और अभिव्यक्ति के दबाव पर अपनी भाषा जैसे अरबी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्द का भी जब-तब

प्रयोग करते हैं। खास तौर पर उनकी कविताओं में खड़ी बोली हिन्दी के अलवा बुन्देलखंडी बोली ढेर सारे शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे–चमकतार, उढंग, बरकाना, बरजना, अलगंट, भूरकस, गदालियाँ अरीकर आदि। मदन सोनी जी के शब्दों में कहें तो कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में शब्द–संस्कार, शब्द–स्पृहा, शब्द की निरूपाधि प्रतिष्ठा और शब्द को एक पूर्णाङ्ग तथा रूपवान सत्ता के स्तर पर देखेजाना अतुलनोय है। अशोक वाजपेयी की कविताओं में शब्द की जादुगरी के प्रसंग में मदनसोनी का कहना द्रषृव्य है — 'ये हिन्दी में सम्भवत : अकेली ऐसी कविताएँ भी है जिनमें स्वयं 'शब्द' नामक शब्द व्यापक रूप से कविता की अलंकार–सामग्री और रस योजना का अंग बनकर आया है। वह इन कविताओं की अन्यतमा उपस्थितियों के बीच उनके साथ सहज और उनके समकक्ष एक उपस्थिति है। शब्द के प्रति यह संस्कारबोध, स्पृहा, सम्मान, उसकी क्षमता पूर्णता, और सौन्दर्य में यह आस्था और उसकी सहज आत्मीय किसे प्रतिबिम्बित कर सकतो है ?' [47]

अलंकार–विधान :

कवि की कल्पना–शक्ति विषय वस्तु को नवीन एंव आकर्षक रूप प्रदान करने के लिए दो भिन्न तत्वों को जिनमें एक प्रस्तुत होता है और दूसरा अप्रस्तुत संयुक्त रूप में प्रस्तुत कर देती हैं जिससे प्रतिपाद्य वस्तु के सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती हैं। इसी प्रक्रिया को परम्परागत काव्यशक्ति में अलंकार–योजना कहा गया है।

कवि अशोक वाजपेयी हालाँकि अपनी कविता में अलंकारों का प्रयोग अभिष्टरूप में या सायास करते हैं ऐसा नहीं लगता है फिर भी जाने अनजाने उनकी कविताओं में विविध अलकारों का सहज स्वाभाविक समावेश हो गया है। ऐसा ही स्वाभाविक है अलंकारो के प्रयोग के प्रसंग में आनन्दवर्द्धन का कहना कि

प्रतिभावान कवि के सामने अलंकार साथ जोड़े किसी प्रकार के प्रयास के बिना एक के बाद एक स्वत : चले आते है और स्वयं कवि को भी विस्मय विमुग्ध कर देते है। यह उक्ति कवि अशोक वाजपेयी के भी लिए पूर्ण रूप से सही साबित होता दिखाई पड़ता है। कवि अशोक वाजपेयी को काव्य में सभी अलंकार–शब्दालंकार अर्थालंकार और उभ्यालंकार की प्रयोग हुआ है जबकि इसमें से अर्थालंकारों का प्रयोग सर्वाधिक मिलता है जिनमें उपमा, रूप और उत्प्रेक्षा आदि प्रमुख हैं।

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में सबसे ज्यादा उपमा और रूपक अलंकार का प्रयोग करता है, जिनमें अधिकतर उपमाएँ कवि की अपनी मौलिक हैं जो अपने परिवेश–परिस्थिति और जीवन के प्रति उनकी मौलिक दृष्टिकोण तथा समृद्ध काव्य प्रतिभाओं की पहचान है। अवश्य कुछ परम्परागत उपमाओं का प्रयोग भी उनकी कविताओं में मिलती हैं जो कवि की भावों को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने में मदद करती हैं रूपकों के बारे में कहना ही क्या : कवि अशोक वाजपेयी कविताओं में रूपकों का अम्बार देखने को मिलता है। कवि गम्भीर से गम्भीर विषय तथा भावों को सुन्दर और सुपरिचित रूपको के माध्यम से इतनी खुबसूरती के साथ अभिव्यक्त करते हैं जिससे उनकी कविताओं को अभिव्यंजना पक्ष पर चार–चाँद लग जाता है। उत्प्रेक्षा अलंकार का भर मार भी कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में देखा जा सकता है।

शब्दालंकारों में अनुप्रास, चमक और कहीं कहीं श्लेष अलंकार का प्रयोग हुआ इसमें से अनुप्रास अलंकार का प्रयोग कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जब–तब देखने को मिलता है।

वस्तुत : जैसा कि अलंकार वाणी का विभूषण है न कि चमत्कार। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में विविध अलंकारों का जो प्रयोग करते हैं वह चमत्कार के लिए नहीं उनकी कविताओं में अलकारों का प्रयोग सहज, सार्थक और

नैसर्गिक रूप में हुआ है। जिससे उनकी कविताओं में विन्यस्त उनकी दृष्टि, सरोकार और गहन भावों की सम्प्रेषणीयता को सार्थक करने के साथ साथ उनकी कविताओं को उदात्तता प्रदान करता है।

कुछ उदाहरण यहां पर प्रस्तुत करना बेहतर रहेगा। कवि अशोक वाजपेयी की छोटी सी कविता 'पहला चुम्बन' शीर्षक में मानवीकरण अलंकार का कितना सुन्दर प्रयोग हुआ है जिसे देखा जा सकता है —

'एक जीवन पत्थर की दो पंत्तियाँ
रक्ताभ उत्सुक
काँपकर जुड़ गई,
मैंने देखा :
मैं फूल खिला सकता हूँ।' [48]

'रूपक' अलंकार का एक नमुना देखा जा सकता है, कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'एक आदिम कवि का प्रत्यावर्तन' शीर्षक में —

'लोगो मैं सम्भता का काव्यमुख लाया हूँ
ये मेरी छाती धरती की याद है
ये मेरी जाँघें घाटियों का प्रेम हैं
ये मेरी आँखें झीलों का रूप हैं
लोगो, मैं तुम्हारी आदिम हँसी हूँ
मुझमें तुम्हारा वह आँसू संग्रहीत है' [49]

निम्नलिखित कविता पंक्तियों में एक साथ उपमा और अनुप्रास अलंकार की छटा देखने को मिलता है। जैसा कि कवि इस सब अलंकारों का प्रयोग सायास नहीं अनायास हैं। जो उनकी भावों को सहज और प्रभावी बनाने में सार्थक हुआ है। क्यों शीर्षक कविता की पंक्तियाँ —

'एक खिलौने की तरह

उठाएगी तुम्हें एक दिन मृत्यु

और बिना तोड़े जस का तस

रख देगी

वहाँ जहाँ सुनसान होगा

न राशन, न नीला, न नीरव —

देवताओं से दूर,

और पृथ्वी-आकाश से

अछूता।' [50]

विरोधाभास अलंकार का एक नमुना कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'कुछ तो' शीर्षक में से —

'उड़ जाएँगी सारी कविताएँ

अनन्त में विलीन हो जानेवाले पंक्षियों की तरह,

पर कुछ रूपक और शब्द बचे रह जाएगे

वनभूमि में परनीरव गिरनेवाले पंसों की तरह।' [51]

विभावना अलंकार का उत्कृष्ट एक उदाहरण यहा उल्लेख किया जाए है —

'दहकता गुलमोहर का फूल

कहाँ जानता है

कि उसने लगा दी है आग

हरियाली में।' [52]

बिम्ब-विधान :

कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ बिम्ब-विधान से सम्पुष्ट हैं। उनकी कविताओं में जिस तरह सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को सठिक और सार्थक शब्दों से

चित्रण करते हैं जो सहज ही बिम्बों का रूप धारण करलेता हैं और कविता का आशय सहजता से स्पष्ट हो जाता है। वैसे भी काव्य भाषा की दृष्टि से कवि अशोक वाजपेयी को महारत हासिल हैं। अत: कवि अशोक वाजपेयी का बिम्ब-विधान एक गहरे अर्थ में अनुभवों से संचित ऐतिहासिक-सांस्कृतिक ज्ञान तथा अपने समसामयिक परिवेश के युग-बोध से परिपूर्ण है। अत: उनकी कविताओं में जो बिम्बों का विधान रहा है वह अत्यन्त समृद्ध, कलापूर्ण तथा वैविध्ययुक्त है।

अशोक वाजपेयी की कविताओं में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा अनेक बिम्बों में से कुछ बिम्बों का उदाहरण पेश किया जा रहा हैं। कवि की एक मशहूर कविता 'एक खिड़की' शीर्षक की इन पंक्तियों में एक गृहिणी की छबि जो रेशमी वस्त्र परिधान करके देवता से वरदान मांगने के लिए बृक्ष के नीचे फूल मधुरिमा आदि देती है —

'शायद कोई गृहिणी
बसन्ती रेशम में लिपटी
उस वृक्ष के नीचे
किसी अज्ञात देवता के लिए
छोड़ गई हो
फूल-अक्षत और कुछ मधुरिमा।' [53]

'बोझ से कविता' शीर्षक कविता में दृश्य-बिम्ब का एक सुन्दर झाँकी देखा जा सकता है कि किस तरह एक पक्षी जमीन पर फुदक-फुदककर कीड़े बीनता है, फिर पक्षियों का झुण्ड शोर मचाते हुए जंगल के एक छोर से दूसरे छोर की ओर उड़ता है —

'कंकड़ों और सूखी पत्तियों से ढँकी जमीन पर
धीरे-धीरे फुदकता
और कीड़े बीनता ह एक पक्षी

जंगल के सुनसान में

आवाज देता पक्षियों का एक झूण्ड उड़ता है

एक छोर से दूसरे की और' [54]

एक और चाक्षुष बिम्ब का जीता जागता उदाहरण देखा जा सकता है कवि अशोक वाजपेयी अपनी असाधारण प्रतिक्षा बलपर मृत्यु जैसे गम्भीर और मार्मिक विषय को कितना सुन्दर और आन्तरिकता के साथ बिम्बों में रूपाकर करते हैं। कवि की कविता 'मौत की टू में दिदिया' शीर्षक में। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'द्रेन के बरामदे में खड़े लोग

बाहर की ओर देखते हैं

पर न तो जल्दी ही उतरने और न ही कहीं अन्दर

बैठने की जगह पाने की उम्मीद में

बिना उम्मीद के इस सफर में

दिदिया भी कहीं होगी दुबकी बैठी

या ऐसे ही कोने में कही खड़ी

और पता नहीं उसने काका की खोज की भी या नहीं

दोनों अब इसी द्रेन में हैं जो बिना कहीं रुके

न जाने किस और चली जा रही है हरहराती हुई' [55]

'शहर के पार–मौत' शीर्षक कविता में कवि शहर के स्वास्ता हालत को कुछ यों वयान करते हैं कि आँखों के खुदी हुई सड़क ज्यों के त्यों दिखाई पड़ते हैं। कवि अपने भावों को शब्दों के माध्यम से इस तरह व्यक्त करते हैं कि हु–बहु देखने जैसा अनुभव होता है। देखिए वानगी—

'महिनों बाद लौटकर आता हूँ अपने शहर

और खुदी हुई सड़के देखकर

शहर के पार चिल्लाता हूँ — मौत!

कोई नहों सुनता

न कोई ध्यान देता है।

× × × ×

लँगड़ाती हुई एक लड़की

हाथ में पुस्तकें और कापियाँ दबाए

धीरे धीरे लौटती है अपने घर की ओर

ऊची इमारतों और भर्राते टैम्पों के बीच

वह निरन्तर चलतो रहती हैं.....' [56]

प्रतीक-विधान :

कवि अशोक वाजपेयी का कविताओं का संसार अत्यन्त बड़ा संसार है और ऐसा तो होना ही है क्योंकि लगभग छः दशक से कविता लिख रहे हैं बुजुर्ग कवि के लिए कविता कामिनी है, घर है। कवि के कविता संसार के जैसा ही अनुभूति जगत भी व्यापक और विराट है उसी तरह से उनका प्रतीक-बिधान भी व्यापक और वैविध्य-पूर्ण हैं। कवि अपनी कविताओं में अनुभूतियों के सबल और सार्थक अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक का इस्तेमाल करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में भावानुकूल, प्रांसगिक और अर्थवह परम्परागत प्रतीकों का भी करते ही हैं उसी के साथ-साथ ढेर सारे नये प्रतीकों का भी प्रयोग करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी की प्रतीक-योजना और उपमान केवल प्रतीकों और उपमानों के प्रयोग के लिए नहीं हैं अपितु संवेदना की तीव्रता और उपमानों के प्रयोग के लिए नहीं है अपितु संवेदना की तीव्रता से आन्तरिक दबावों और विवशताओं के कारण ही कवि को प्रतीकों और उपमानों का आश्रय ग्रहण करना पड़ा है। सूक्ष्म के लिए सूक्ष्म और स्थूल के लिए स्थूल तथा सूक्ष्म के लिए स्थूल और स्थूल के लिए सूक्ष्म उपमानों

का प्रयोग कवि अशोक वाजपेयी के काव्य को एक उत्कृष्ट आधार और मोहक स्वरूप प्रदान करता है। कवि अशोक वाजपेयी के प्रतीक और उपमान एक और उनकी अनुभूति को सुव्यवस्थित करते हैं तो दूसरी ओर उनकी अभिव्यक्ति को सम्प्रेषणीयता भी प्रदान करते हुए उनके अनुभवी कवि व्यक्तित्व का उदघाटन और मौलिक, प्रकृत काव्य-प्रतिभा का निदर्शन भी करते हैं।

कवि अशोक वाजपेयी को कविताओं में जिन प्रतीकों का बार बार प्रयोग हुआ है उनमें कीचड़, चटटान, पक्षी, आकाश दिगम्बर, छीड़े, हरी पत्तियाँ, धूप, वृक्ष, अमयद, फूल, बादल, जंगल, सुर्य, धूप, चन्द्र, बस की सीट, पतंग, तोता, अँधेय, चींटी, तितलियाँ, देवता, नदी, पगडंडी, पुस्तक, आदि। बहुधा इन सब प्रतीकों में से अनेक प्रतीक परम्परागत हैं मगर स्वतन्त्र-चेतन के आधिकारी कवि अशोक वाजपेयी इन्हीं सब प्रतीकों का प्रयोग नये सन्दर्भो में किया है। जिससे पुराने प्रतीक नये भावबोध को व्यक्त करने में सफल हुए हैं। हालाँकि शुरु से ही कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में नयी प्रतीक योजना और नये उपमानो की स्थापना पर जोर देते रहे इस प्रसंग में कवि का कहना हैं — शब्द की अक्षरता मेरे लिए बहुत बड़ा भरोसा है और स्वंय कविता की अतिजीविता का आश्वासन भी। यों तो कविता शब्दों से ही लिखी जाती हैं लेकिन मेरे यहाँ शब्द का प्रयोग प्रतीक के रूप में बहुधा है। भाषा अगर मनुष्य का सबसे क्रान्तिकारी आविष्कार है जैसी कि मेरी मान्यता है तो उसकी कल्पना, साहस, अतिजीवता और अध्यात्म का सबसे ज्वलन्त और अमिट प्रतीक शब्द है।' [57]

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में अपने भावों को साकार करने के लिए ढेरों प्रतीक का प्रयोग करते हैं। उन्होंने अनगिनत ऐसे प्रतीकों का इस्तेमाल करते हैं जो दरअसल आम जिन्दगी का हिस्सा है मगर वह इतना तात्पर्यपूर्ण है हम कभी नहीं सोचते। उन्हींसब शब्दों, चीजों का प्रतीक के रूप में कवि अशोक

वाजपेयी की कविता में देखते है तो बस यही लगता है क्या ऐसा भी हो सकता हैं ? एक उदाहरण 'एक खिड़की' शीर्षक कविता से —

'देवासूर-संग्राम से लहूलुहान
कोई बूढ़ा शब्द शायद
बाहर की ढण्ड से ढिढुरता
किसी कविता को हलकी आँच में
कुछ देर आराम करने रूकना चाहे।' [58]

कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'युवा जंगल' शीर्षक में एक साथ कई प्रतीकों का प्रयोग देखा जा सकता है। कुछ पंक्तियाँ —

'एक युवा जंगल मुझे,
अपनी हरी उँगलियों से बुलाना है।
मेरी शिराओं में हरा रक्त बहने लगा है
आँखों में इसी परछाइयाँ फिसलनी हैं
कन्धों पर एक हरा आकाश ठहरा है
होठ मेरे एक हरे गान में काँपते हैं :
मैं नहीं हूँ और कुछ
बस एक हरा पेड़ हूँ
हरे पत्तियों की एक दीप्त रचना!' [59]

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में छंदों का प्रयोग न के बराबर प्रयोग करते हैं। छंद से उनका लगाव या रूचि नहीं रहा है। यह हाल लगभग शुरू में लेकर आजतक है। इस प्रसंग में कई उनसे पूँछा भी है। हो सक्ता है जिस समय उनका कविता में प्रवेश हुआ वह नयी कविता का शुरूआती दौर था, उसी का प्रभाव हो। वे छंद के वजाय 'लय' को कविता के लिए अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

उनका कहना है कविता छन्द से नहीं लय से बनती है। कवि अशोक वाजपेयी मुक्त छन्द में अपने को अधिक अवकाश और मुक्ति अनुभव करते हैं। छन्द को वे तिरष्कार नहीं करते हैं लेकिन छंद के कारण कविता में विचार शीर्ष हो जाय इसे वे पसन्द नहीं करते हैं। अवश्य हाल ही में कवि अशोक वाजपेयी यह स्वीकारते हैं कि कविता में मुक्त छन्द से एकरसता आ. गयी हैं छन्द की वापसी होना चाहिए। उनका कथन उद्धृत किया जा रहा हैं — 'यह ,ही है कि मैंने छन्द वध्य कविताएँ नहीं लिखी हैं। बिलकूल आरंभिक काल में जरूर इसका कुछ अभ्यास किया था। लेकिन कविता छन्द से नहीं लय से बनती है। मैंने कई तरह की लये बरती हैं — मुक्त छन्द में मुझे अधिक अवकाश और मुक्ति अनुभव होते हैं। पर इधर कविता में मुक्त छन्दकी ऐसी एक रसता छा गई हैं कि छन्द की वापसी होना चाहिए।' [60]

निष्कर्ष :

कवि अशोक वाजपेयी भाषा के प्रति एक अत्यन्त जागरूक कवि है। साथ ही असाधारण काव्य–प्रतिभा के धनी कवि अपनी कविता में अभिव्यक्ति के साथ सम्प्रेषणीयता को लेकर भी काफी सजग है। हालाँकि कवि बारीकी, सूक्ष्मता कुछ हद तक रहस्य और जटिलता भी मूल्यवान कला कें अनिवार्य गुण मानते हैं। बावजूद इनके कवि अशोक वाजपेयो की कविताओं का समग्र रूप में सम्प्रेषणीयता का अभाव नहीं है। स्वयं कवि इस बारे में कहते हैं — 'बारीक कातना, परिष्कार, सूक्ष्मता और जटिलता के बावजूद सम्प्रेषणीयता का अभाव नहीं है।' [61] कवि अशोक वाजपेयी अपनी भावाभिव्यक्ति में शब्दों के अत्यन्त सशक्त और प्रभावी स्वरूपों को ही चूना है, जिससे उनके काव्य में प्रभविष्णुता, प्रभावोत्पादकता तथा सशक्त भाव व्यंजन के गूण सर्वत्र विद्यमान हैं। कवि अपनी कविताओं में भावों की सफल अभिव्यजंना के लिए ऐसे अनेक मुहावरों, लोकोक्तियों, सुक्तियों और

प्रचलित शब्द समूहों का प्रयोग भरपूर किया है, जिससे उनके काव्य की भाषा का समाहार शक्ति में सवंर्द्धन होकर भावों की सम्प्रेषणीयता को समुचित गति मिली हैं। वस्तुत : कवि अशोक वाजपेयी एक प्रकृत कवि हैं। उनकी नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा के कारण भाषा, शब्दयोजना, छन्द, अलंकार, बिम्ब प्रतीक और उपमान आदि-अभिव्यंजना के विविध उपादानों पर कवि का असाधारण अधिकार है। उनकी कविताएँ इसका प्रमाण है।

सन्दर्भ :

1. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 275
2. पावभर जीर में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 34
3. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 40
4. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 65
5. समय के पास समय, अशोक वाजपेयी,2000 पृ. 78
6. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 52
7. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 91
8. समय के पास समय, अशोक वाजपेयी,2000 पृ. 18
9. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 103,4
10. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 43,44
11. दुख चिट्ठीरचा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 45
12. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 127
13. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 –भूमका
14. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 234
15. कुछ रफ़ु कुछ थिगड़े, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 52
16. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 29
17. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 90
18. कहीं नहीं वहीं, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 103
19. अथातो काव्य जिज्ञासा, सम्पा: डॉ मंजुल उपाध्याय, 1996 पृ. 103
20. अथातो काव्य जिज्ञासा, सम्पा: डॉ मंजुल उपाध्याय, 1996 पृ. 276
21. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी सम्पा : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 9
22. समय के पास समय, अशोक वाजपेयी,2000 पृ. 41

23. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 166
24. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 45
25. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 34
26. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 81
27. यहाँ से वहाँ - अशोक वाजपेयी, 2011 पृ. 347,348
28. मेर साक्षात्कार अशोक वाजपेयी -सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी,1998 पृ. 27
29. तिनका-तिनका भाग- 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 367
30. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 72
31. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 33
32. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 17
33. मेर साक्षात्कार अशोक वाजपेयी-सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी,1998 प.28
34. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 213
35. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 258
36. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 199
37. यहाँ से वहाँ - अशोक वाजपेयी, 2011 पृ. 68
38. यहाँ से वहाँ - अशोक वाजपेयी, 2011 पृ. 90
39. यहाँ से वहाँ - अशोक वाजपेयी, 2011 भूमिका
40. यहाँ से वहाँ - अशोक वाजपेयी, 2011 पृ. 199
41. तिनका-तिनका भाग- 1, अशोक वाजपेयी, 1996 भूमिका पृ. 12
42. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 61
43. अथातो काव्य जिज्ञासा, सम्पादक: डॉ. मंजुल उपाध्याय, 1996 पृ. 291-92
44. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी-सम्पादक:अरविन्द त्रिपाठी,1998 पृ. 114,15

45. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 32

46. मेर साक्षात्कार अशोक वाजपेयी–सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी,1998 पृ.150

47. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पादकः सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 297

48. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 42

49. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 90

50. पूर्ववत् – पृ. 228

51. पूर्ववत् – पृ. 299

52. पूर्ववत् – पृ. 394

53. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 59

54. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 115

55. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 121

56. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 129

57. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 33

58. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 59

59. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 39

60. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी–सम्पादकः अरविन्द त्रिपाठी,1998 पृ.100

61. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 15